श्री कबीर ज्ञानामृत

आज़ादी का अमृत महोत्सव

अक्टूबर-दिसम्बर
वर्ष-२०२२
अंक-९२

SC:AIAY D122 V92{75-94}
श्री प्रशांत कुमार
स्व. भुनेश्वर प्रसाद
आटा चक्की
अंदर बाजार
फतेहपुर
गया
बिहार
824232

हम सब हिंदू हैं, हम सब भारतीय हैं, हम सब एक हैं।
जय भारत ! जय दिव्य भूमि !

परम वंदनीया सद्गुरु 'मां ज्ञान'

जन्मोत्सव के अवसर पर गुरुपूजन को तत्पर श्रद्धालु भक्तवृन्द

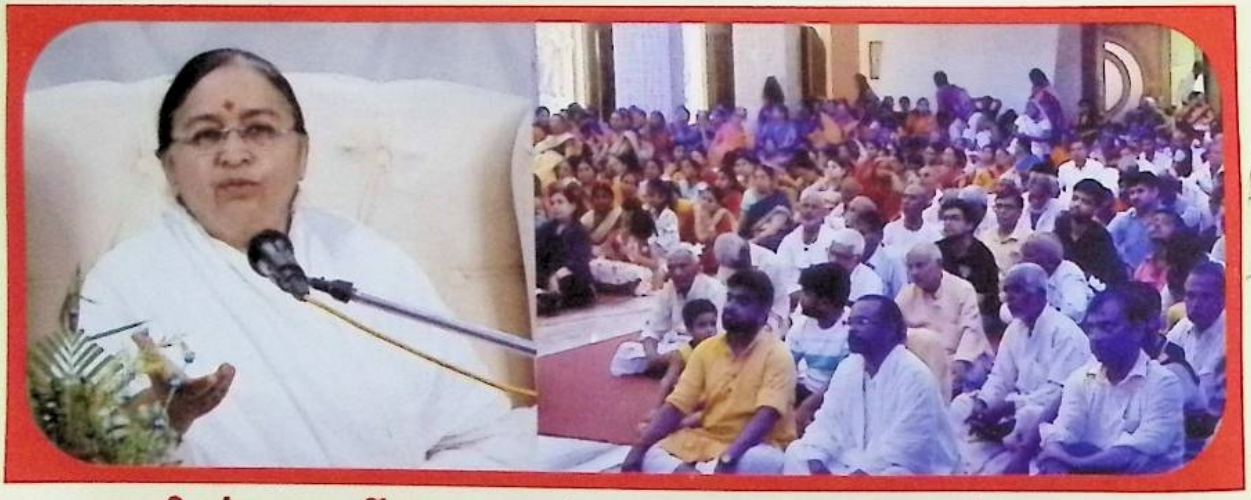

ज्ञान की गंगा बहातीं सद्गुरु मां : ज्ञानामृत का पान करते भक्तवृन्द

वृहद् रक्तदान शिविर : एक दृश्य

SCANNED

श्री कबीर ज्ञानामृत

गुरु को सिर पर राखिये, चलिये आग्या माँहि ।
कहैं कबीर ता दास को, तीन लोक भय नाहिं ।।

संस्थापक - संरक्षक

तपोमूर्ति ब्रह्मलीन परमपूज्यपाद संत विवेक साहिबजी महाराज
एवं परम वंदनीया करुणामयी मां साध्वी ज्ञानानंद जी

अमृत वाणी

अब तुम खबरदार रहो मेरे भाई

अब तुम खबरदार रहो मेरे भाई ।।

सतगुरु दियो माल खजाना , राखो जुक्ति लगाई ।
पाव रति पर घटे न पावै , दिन–दिन बढ़त सवाई ।।
वस्तु पाय गाफिल मत रहना , निसदिन करो कमाई ।
या नगरी में चोर बसत हैं , रह गये घाट लगाई ।।
तन बन्दूक सुरत सींगड़ा , ज्ञान को गज ठहराई ।
सुरत पलीता हरदम सिलगे , रह गये चाप चढ़ाई ।।
क्षमा सील को बखतर पहिरे , जुक्ति के लांग चढ़ाई ।
नाम टोप माथे धर लीन्हो , दुरमति करत लड़ाई ।।
पहरेदार सिपाई सांचा , ओ ना सोवे भाई ।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधु , पल–पल देत जगाई ।।

श्री कबीर ज्ञानामृत

वर्ष : २३ अंक : ९२
अक्टूबर-दिसंबर सत्र-२०२२
मूल्य – (१ प्रति) रु. १६.००
त्रिवार्षिक – रु. १८०.००
पंचवर्षीय – रु. ३००.००
दसवर्षीय – रु. ६००.००
संपादिका :–
साध्वी कमलिनी वाग्मी
कवर एवं पृष्ठ सज्जा :–
नारायण दास
चलभाष : 9431453090, 9155950505, 6200183379
e mail : srikabirgyanmandir@gmail.com
web-site : www.kabirgyan.com
youtube channel: "kabirgyan"
follow us on facebook: "SriKabirGyanMandir"
प्रकाशक एवं मुद्रक :–
श्री कबीर ज्ञान प्रकाशन केंद्र, संत कबीर ज्ञान मार्ग, सिहोडीह-सिरसिया, गिरिडीह ने नेशनल प्रिंटर्स, 8H & 8I नामकुम, इन्डस्ट्रीयल एरिया, रांची-834010 से छपाकर प्रकाशित किया।

विशेष सूचना:–
सदस्यता शुल्क की राशि को 'श्री कबीर ज्ञान प्रकाशन केंद्र' के एकाउंट में डालें। एकाउंट नंबर हेतु ऊपर दिए गए संपर्क सूत्र से जानकारी प्राप्त करें।

Subject to Giridih Jurisdiction

इस अंक में...

❋ उद्गार ०३ ❋ आपके पत्र ०४

जीवन उत्थानक सत्संग गंगा
❋ धर्म की मंजिल (साखी सुधा) ०५
❋ स्थिर बुद्धि की विशेषता (गीता गंगा) ११
❋ मानव की पहचान २९
❋ कर्म से कर्मयोग ३९

कथा सौरभ
❋ सबसे महत्त्वपूर्ण ०९ ❋ चार मठों की कहानी २५

भजन
❋ अब तुम खबरदार रहो मेरे भाई... (अमृत वाणी) ०१
❋ जग हुताशन की...(ज्ञान उद्गार) २४

विशिष्ट
❋ चमत्कारी है राम नाम (कबीर जयंती उपदेश) १६
❋ तीन बातें (जन्मोत्सव उपदेश) ३४

स्थायी स्तंभ
❋ हंसा प्यारे सरवर तेजि .. (बीजक..) २०
❋ जिज्ञासु की जिज्ञासा २३
❋ हम सबकी सद्गुरु मां २६
❋ सद्गुरु मां के संग.. ४४

विविध
❋ अमृतवाणी ०८
❋ ज्ञानसूत्र २२
❋ सभी के पूर्वज एक ३१
❋ अमूल्य ज्ञाननिधि ४३
❋ अलसी के लाभ व सावधानियां ४६
❋ पाठक बंधुओं से ४८ ❋ पुस्तक सूची ४८

श्री कबीर ज्ञानामृत २०२२ ई. के अक्टूबर नवंबर और दिसंबर की त्रैमासिक पत्रिका, अंक ९२ प्रस्तुत है।

मानव जीवन पूर्णत्व प्राप्ति की आधारशिला है। इस मानव जीवन का एक ही लक्ष्य है– भगवद्प्राप्ति यानी सत्, चित् और आनंद की प्राप्ति। श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार, इस लक्ष्य की प्राप्ति के तीन प्रमुख मार्ग हैं– निष्काम कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग।

ये तीनों मार्ग हैं तो एक ही मंजिल तक पहुंचाने वाले, किंतु जन सामान्य के लिए इन तीनों में सर्वाधिक सरल और सुगम है– निष्काम कर्मयोग। व्यक्ति कर्म किए बिना रह नहीं सकता। यदि कर्म करने की कला सीख ली जाए तो सांसारिक कर्तव्यों को करते हुए व्यक्ति गौरीशंकर के शिखर को छू सकता है।

पुण्डरीक ने मातृ-पितृभक्ति करके, उनके प्रति अपने कर्तव्यों का यथोचित पालन करके प्रभु की प्रसन्नता को प्राप्त कर लिया। कर्तव्यपालन के द्वारा श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाए और उन्होंने भगवत्ता को प्राप्त कर लिया। कर्तव्यों के ठीक-ठीक निर्वहन से अनुसूया में इतनी क्षमता आ गई कि वह ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को भी नन्हा शिशु बना दी। यदि कर्तव्य करने की कला सीख ली जाए तो भगवान को प्रसन्न ही नहीं, भगवान को वश में भी किया जा सकता है।

यह कर्तव्य की कला मिलती है सच्चे ज्ञानियों के सत्संग में, उनके सद्ग्रंथों में। सच्चे सद्गुरु ही यह ज्ञान देते हैं कि यह संसार कर्तव्य करके प्रभु की प्रसन्नता को प्राप्त करने के लिए है, मोह में अथवा राग-द्वेष में फंसने के लिए नहीं। संसार प्रभु-प्रसन्नता प्राप्ति का साधन है, इसे नरक में धंसने का साधन मत बनाओ।

ब्रह्मज्ञानी सद्गुरु का यह दुर्लभ और अनमोल ज्ञान श्री कबीर ज्ञानामृत पत्रिका के रूप में आपके घर पहुंचकर आपको जगा रहा है, 'हे सुखेच्छको! हे साधको! हे जिज्ञासुओ! उठो, जागो और अपने जीवन को संवारो।

जीवन है तो इसमें कभी सुख, कभी दुख, कभी अनुकूलता तो कभी प्रतिकूलता, कभी हर्ष तो कभी विषाद, कभी मिलन, कभी वियोग, कभी जन्म, कभी मृत्यु, कभी स्वस्थता तो कभी बीमारी, कभी सफलता तो कभी असफलता, कभी लाभ तो कभी हानि, कभी दिन कभी रात होगी ही। इन द्वन्द्वों के बीच भी मुस्कराते हुए जीवन जीना और आनंदित रहना सीख लो। बाहर के धन, जन और परिस्थिति को अपने वश में नहीं किया जा सकता, पर अंतस के धन–शांति और आंनंद को अवश्य बचाया जा सकता है।'

विगत कार्यक्रम–विगत त्रिमासे में १३ जुलाई २०२२ को गुरुपूनम एवं भाद्रशुक्ल चतुर्थी (३१ अगस्त २०२२) को परम करुणामयी सद्गुरु मां के दिव्य जन्मोत्सव के अवसर पर गुरुपूजन, श्रद्धा समर्पण एवं

सत्संग-भजन का कार्यक्रम संपन्न हुआ।

सद्गुरु मां के पावन जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में वृहद् रक्तदान शिविर का आयोजन हुआ। इस अवसर पर सद्गुरु मां के करकमलों द्वारा मां ज्ञान कौशलम् की बेटियों को सपरिवार वस्त्रवितरण किया गया। वृहद् रक्तदान शिविर उद्घाटन के अवसर पर तथा संध्या सत्संग के अवसर पर सद्गुरु मां के दिव्य उपदेश एवं प्रेम-भक्तिपूर्ण सांस्कृतिक कार्यक्रम संपन्न हुए।

सद्गुरु मां के जन्मोत्सव के महत्त्वपूर्ण अवसर पर बहुसंख्यक भाई-बहनों ने उत्साहपूर्वक सद्गुरु मां के कल्याणकारी साहित्यों का प्रचार-प्रसार किया। प्रचार-प्रसार की सेवा में बिहारशरीफ के 'धनंजय वर्मा' एवं गिफ्ट के रूप में दूरस्थ स्थानों में भी सद्गुरु मां की पुस्तकों का उपहार देने में गाण्डेय निवासी (वर्तमान में रायपुर) 'आनंद गुप्ता' अग्रणी रहे।

यथाशक्ति जिन्होंने भी इस ज्ञानयज्ञ में भाग लिया, सभी धन्यवाद के पात्र हैं। सभी सेवाधारी भाई-बहनों को सद्गुरु मां का प्यार भरा आशीर्वाद। इस ज्ञान यज्ञ में तन, मन, धन, समय जिस रूप में सक्षम हों, अधिक-से-अधिक लोग सम्मिलित होने का व्रत लें। यह आपका सौभाग्य और मानवता की सबसे बड़ी सेवा एवं सद्गुरु की प्रसन्नता को प्राप्त करने का सबसे सरल साधन है।

पुनः सेवाधारी बंधुओं से निवेदन है कि पत्रिका प्राप्त होने पर एक सप्ताह के अंदर आप अपने पाठक बंधुओं तक पत्रिका अवश्य पहुंचा दें। शेष शुभ। ❀

श्री कबीर ज्ञानामृत पत्रिका मेरे जीवन का आधार है। मेरे मन के विकार शनैः शनैः नष्ट होते जा रहे हैं, हे सद्गुरु मां! यह आपके साहित्य और आशीर्वाद का ही फल है–

हे गुरुदेव! हे दयालु! मेरे साहिब आप हैं ।
आप मानें या न मानें, मेरे खालिब आप हैं ।।
श्वास लेता हूं तो यह महसूस होता है मुझे ।
जैसे मेरे दिल की हर धड़कन में शामिल आप हैं ।।
गम नहीं जो लाख तूफानों से टकराना पड़े ।
मैं वो कश्ती हूं कि जिस कश्ती के साहिल आप हैं ।।
जनम नहीं मरण नहीं, मैं तो आनन्द रूप हूं ।
सच का ये रूप तूने दिखाया, मां! तू तो बेमिशाल है ।।

नारायण सिंह, मानी, राजस्थान

श्री कबीर ज्ञानामृत का प्रत्येक अंक एक विशेषांक है। अंक ९१ में 'शून्य से पूर्ण' का प्रसंग–'इधर मेरा 'मैं' गिरता है, उधर परमात्मा प्रकट हो जाते हैं', 'स्थितप्रज्ञ के लक्षण' में स्थितप्रज्ञ की मनःस्थिति का शब्दचित्र और 'चमत्कारी है राम नाम' में सद्गुरु कबीर का प्रसंग हृदय को छू गया। जीवन में आध्यात्मिकता की ऐसी सरल युक्ति का वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है।

'अमीरी-गरीबी का रिश्ता' में राजा भोज का दृष्टिकोण बहुत अच्छा लगा। 'हिन्दू कौन?' एवं 'जातिप्रथा थोथली'–हिंदू समाज के लिए अमृत है, इसे सभी को सीखना चाहिए। **ऑल इन वन–श्री कबीर ज्ञानामृत पत्रिका** घर बैठे प्रदान करने के लिए सद्गुरु मां को अनंतो धन्यवाद!

अरुण माथुर, गिरिडीह।

❋ सद्गुरु मां ज्ञान

धर्म की मंजिल

साखी का तत्सम रूप है–'साक्षी'। साक्षी का अर्थ होता है साक्ष्य यानी गवाह। साखी में सद्गुरु कबीर विभिन्न साक्ष्यों–उदाहरणों को देते हुए सरल भाषा में मानवीय मंजिल का वर्णन करते हैं। बीजक ग्रंथ की पहली साखी में सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं–

जहिया जन्म मुक्ता होता, तहिया होता न कोय।
छठी तुम्हारी हौं जगा, तू कहं चला बिगोय।।

(बीजक साखी–१)

अर्थात् 'जिस समय तुम वर्तमान जन्म से मुक्त थे, उस समय वर्तमान शरीर, कुल-कुटुंब, माता-पिता, भाई-बहन, जाति-पाति, मित्र-परिजन, देश-भाषा आदि कोई नहीं थे। पंभभूतों से परे छठा आत्मतत्त्व उस समय भी था। पूर्व जन्मों के संस्कारों में तादात्म्य होने के कारण उसी आत्मतत्त्व में अहंकार (देहाध्यास) जागा, जिससे वर्तमान जन्म हुआ। तू अपनी आत्मस्मृति को नष्टकर कहां चला जा रहा है?'

जीव का छठवां स्वरूप

जन्म से पूर्व एवं मृत्यु के पश्चात् शरीर नहीं रहता, फिर भी व्यक्ति की आत्मा रहती है। अतः व्यक्ति का 'मैं' शरीर नहीं आत्मा है। यहां सद्गुरु कबीर कह रहे हैं, 'तू अपने 'मैं' आत्मा को भूलकर देहाध्यास में कहां भटक रहा है?'

अपनी इस साखी के द्वारा सद्गुरु कबीर शिष्य को आत्मबोध की ओर ले चल रहे हैं। वे कहते हैं, जिस समय तुम इस वर्तमान शरीर यानी जन्म से मुक्त थे–**तहिया होता न कोय**–उस समय वर्तमान परिवार, नाते-रिश्ते, जाति, कुटुम्ब इत्यादि कुछ भी तुम्हारे नहीं थे। वर्तमान आकृति, वर्तमान शरीर, लम्बा, नाटा, स्त्री-पुरुष इत्यादि कुछ नहीं था तुममें। वह कौन-सा स्वरूप था तुम्हारा? कहां थे तुम? तब तुम कैसे थे? इस पर विचार करो।

पांच भूतों से शरीर बना है। यथा–

क्षिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित यह अधम शरीरा।।

'आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इन पांच भूतों से शरीर-संसार की निर्मिति हुई।'

इन पंच भूतों एवं पंच भौतिक शरीरों से परे छठवां स्वरूप है तुम्हारा आत्मस्वरूप। गीता ३.४२ में कहा गया है–

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।।

अर्थात् 'शरीर अथवा विषयों से परे यानी उत्तम इन्द्रियां हैं। इन्द्रियों से विषयों को जाना जाता है, पर विषयों के द्वारा इन्द्रियों को नहीं जाना जा सकता। इन्द्रियां विषयों के बिना रह सकती हैं, पर इन्द्रियों के बिना

विषय नहीं रह सकते। इन्द्रियां ज्यों-की-त्यों रहती हैं, पर विषय बदलते रहते हैं। विषय इन्द्रियों के अंतर्गत आते हैं, पर इन्द्रियां विषयों के अंतर्गत नहीं आती हैं। इस तरह इन्द्रियां विषयों से श्रेष्ठ और सबल हैं।

इन्द्रियों से श्रेष्ठ मन है। मन को इन्द्रियों का राजा कहा जाता है। मन के कहे अनुसार ही इन्द्रियां संचालित होती हैं। जिस इन्द्रिय के साथ मन संयुक्त होता है, वह इन्द्रिय सबल हो जाती है। इन्द्रियां मन को नहीं जानती, पर मन सभी इन्द्रियों को जानता है।

इन्द्रियां मात्र अपने विषय को जानती हैं, अन्य इन्द्रियों के विषयों को नहीं जानती। जैसे आंखें दृश्य को तो जानती हैं, पर शब्द, स्पर्श, रस और गंध को नहीं जानती। कान मात्र शब्द-ध्वनि को जानता है, पर रूप, रस, गंध, स्पर्श को नहीं जानता। वैसे ही रसना मात्र स्वाद को जानती है, पर अन्य इन्द्रिय विषयों को नहीं जानती। नाक, त्वचा आदि भी मात्र अपने-अपने विषय को जानती हैं, पर अन्य इन्द्रिय विषयों को नहीं जानती। परंतु मन सभी इन्द्रियों को एवं उनके विषयों को जानता है। इसलिए मन इन्द्रियों से सबल और श्रेष्ठ है।

मन बुद्धि को नहीं जानता, पर बुद्धि मन को जानती है। मन शांत है या अशांत, विकारी है या अविकारी, चंचल है या एकाग्र, सुखी है या दुखी आदि सब कुछ बुद्धि जानती है। इन्द्रियां व उसके विषयों को और मन के समस्त संकल्प-विकल्पों को भी बुद्धि जानती है। इस प्रकार मन-इन्द्रियों से बुद्धि पर यानी श्रेष्ठ और बलवान है।

इस बुद्धि से भी पर-श्रेष्ठ अहम् (अहंकार) है। तभी अहम् कहता है, 'मेरी बुद्धि।' बुद्धि की स्मृति-विस्मृति, स्थूलता-सूक्ष्मता आदि सहित मन, मन के संकल्पों-विकल्पों तथा समस्त इन्द्रियों व इन्द्रियों के विषयों को भी अहम् जानता है। इसलिए अहम् बुद्धि से भी श्रेष्ठ है। इस अहम् का भी ज्ञाता, प्रकाशक आत्मा है। इस तरह आत्मा सर्वाधिक श्रेष्ठ है।

सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं, छठी यानी विषय, इन्द्रियां, मन, बुद्धि, अहम् से परे और पंचकोशों (अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश एवं आनन्दमय कोश) से परे छठे– तुम्हारे आत्म स्वरूप में हौं–अहंकार जागा और तुम संसार में आ फेंकाए। इस संसार में आकर तू अपने आपको भूलकर कहां चले जा रहे हो?

कोश का तात्पर्य आवरण–परदा भी होता है। आत्मतत्त्व पंचकोशों यानी पंच परदों के पीछे छुपा है। इन पंचकोशों को किंचित् विस्तार से जानते हैं–

१. अन्नमय कोश–इस स्थूल शरीर को अन्नमय कोश कहा जाता है, क्योंकि इस स्थूल शरीर की निर्मिति अन्न से होती है। माता-पिता के द्वारा खाए गए अन्न से उनका रज-वीर्य बना। उसके संयोग से जीव का शरीर बना। उसका पोषण पुनः अन्न से हुआ और अंत में वह अन्नमय पृथ्वी में समा गया। ऐसे शरीर को अन्नमय शरीर या अन्नमय कोश कहते हैं।

देहोऽयमन्नभवनोऽन्नमयस्तु कोशः ।
चान्नेन जीवति विनश्यतितद्विहीनः।।

(विवेक चूड़ामणि)

अर्थात् 'अन्न से उत्पन्न हुआ यह देह ही अन्नमय कोश है, जो अन्न से जीता है और उसके बिना नष्ट हो जाता है।'

आत्मा पर सबसे बाहरी आवरण इसी स्थूल शरीर का है।

२. प्राणमय कोश—अन्नमय कोश से भीतर प्रविष्ट होने पर साधकों की मुलाकात प्राणमय कोश से होती है। प्राणमय कोश के बारे में कहा गया—

कर्मेन्द्रियैः पञ्चभिरञ्चितोऽयं ।
प्राणो भवेत्प्राणमयस्तु कोशः।।

(विवेक चूड़ामणि १६७)

'पांच कर्मेंद्रियों (हाथ, पैर, वाक्, गुद, उपस्थ) से युक्त शरीर को सत्ता देनेवाला पंच प्राणों का समूह (अपान, समान, व्यान, उदान व प्राण) ही प्राणमय कोश कहलाता है।'

३. मनोमय कोश—प्राणमय कोश पार करने पर साधक मनोमय कोश में पहुंचता है। मनोमय कोश क्या है, यह निम्न श्लोक से स्पष्ट है—

ज्ञानेन्द्रियाणि च मनश्च मनोमयः ।
स्यात्कोशो ममाहमिति वस्तुविकल्पहेतुः।।

(विवेक चूड़ामणि १६८)

'ज्ञानेंद्रियां (नेत्र, घ्राण, जिह्वा, कान, त्वचा) और मन ही 'मैं' और 'मेरा' आदि विकल्पों का हेतु मनोमय कोश है।'

यह मनोमय कोश अन्य सभी कोशों से बलवान है। इसमें तरह-तरह के संकल्प-विकल्प, वासना-इच्छाएं, संस्कार इत्यादि भरे पड़े होते हैं। यह अज्ञान काल में मलिन और चंचल होता है। इसे स्वच्छ एवं एकाग्र कर लेना आत्म-साक्षात्कार को प्राप्त कर लेने की बहुत ही सुदृढ़ नींव है।

४. विज्ञानमय कोश—मनोमय कोश के आगे विज्ञानमय कोश का परिचय निम्न श्लोक से परिलक्षित है—

बुद्धिर्बुद्धीन्द्रियैः सार्धं सवृतिः कर्तृलक्षणः ।
विज्ञानमयकोशः स्यात्पुंसः संसार कारणम्।।

(विवेक चूड़ामणि १८९)

'ज्ञानेन्द्रियों के साथ वृत्तियुक्त बुद्धि ही कर्तापन के स्वभाववाला विज्ञानमय कोश है, जो पुरुष के (जन्म-मरण रूप) संसार का कारण है।'

५. आनंदमय कोश—विज्ञानमय कोश से परे व सूक्ष्म आनंदमय कोश है। आनंदमय कोश का विवरण इस प्रकार है—

आनन्दप्रतिबिम्ब चुम्बिततनुर्वृत्तिस्तमोजृम्भिता

(विवेक चूड़ामणि २०८)

'आनंदस्वरूप आत्मा के प्रतिबिंब से व्याप्त तथा तमोगुण से प्रकट हुई वृत्ति आनंदमय कोश है।'

यह कैसा पागलपन?

ईश्वर को भूल जाना कोई बहुत बड़ा गुनाह नहीं है और उससे कुछ खास बिगड़ता भी नहीं है। ठीक है, लोग ईश्वर को भूल गए, कोई बात नहीं है। धर्म को भूल गए, चलेगा। अन्य अनेक बातों को भूल जाएं, वह भी सह्य होगा, पर अपने आपको भूल जाना, यह कैसा पागलपन है?

सद्गुरु कबीर साहब कह रहे हैं कि तुम अपने आपको भूलकर कहां जा रहे हो? जिस दिन आप अपने-आपको जानने लग जाते हैं, उस दिन ईश्वर को जानना बाकी नहीं रह

जाता है। अपने आपका बोध होना, यही तो धर्म की चरम मंजिल है।

दुख की बात है कि व्यक्ति ईश्वर की भी आराधना करता है, धर्म से भी जुटता है तो अपने को भूलकर। अपने को भूलकर ईश्वर की कितनी भी आराधना-उपासना की जाए या धार्मिक कर्मकांडों में डुबकी लगाई जाए, पर मोक्ष-पुरुषार्थ की सिद्धि नहीं हो सकती है। आत्मबोध में ही परमात्म ज्ञान समाहित है। यही परम पुरुषार्थ है।

यह वर्तमान शरीर कुछ दिनों के लिए व्यक्ति को मिला है। जन्म से पूर्व शरीर नहीं था। उस समय तुम कहां थे? सद्गुरु कबीर साहब की एक साखी है–

गैबी आया गैब ते, इहाँ लगाया ऐब।
उलटि समाना गैब में, कहाँ रहेगा ऐब।।

अर्थात् 'आत्मा परमात्मा से आई है और शरीर-संसार में आकर राग-द्वेषादि ऐब-दोष अपने में लगा ली। जब आत्मा शरीर-संसार से उलटकर (असंग होकर) अपने आप में समा जाती है, तब ऐब-दोष कहां रहेंगे? अर्थात् नहीं रहेंगे।'

जब आपके पास शरीर नहीं था, उस समय भी आपका 'मैं' था और मृत्यु उपरांत जब यह शरीर नहीं रहेगा, उस समय भी आपका 'मैं' रहेगा। यह जीव गैब यानी परम सत्ता परमात्मा से आया है और यहां संसार में आकर अपने में ऐब यानी दोष-कलंक को लगा लिया। आसक्ति, मोह, देहाध्यास, काम-क्रोध, मद-मत्सर आदि के पागलपन से भर गया। यदि यह जीव शरीर और संसार से उलटकर अपने आप में समा जाए तो उसका सारा ऐब छूट जाए।

कहवां से आयल हंसा

सद्गुरु कबीर साहब का एक पद है, जिसमें शिष्य प्रश्न करता है–

कहवां से आयल हंसा, कहवां समाय गैल हो राम।
कहवां कैल मुकाम, कहवां लपटाय गैल हो राम।।

'हे गुरुदेव! यह हंस-जीवात्मा कहां से आई और आकर कहां समा गई? कहां मुकाम की और कहां लिपटाय(आसक्त हो) गई?' इसके उत्तर में सद्गुरु कबीर कहते हैं–

निर्गुण से आवल हंसा, सगुण समाय गैल हो राम।
काया गढ़ कैलन मुकाम, माया में लपटाय गैल हो राम।।

अर्थात् 'जीव निर्गुण परमात्मा से आया है और सगुण माया में समा गया। काया गढ़ में डेरा डाला और माया में लपटा गया।'

अमृतवाणी

अगन नहीं जहँ तप करूँ, नीर नहि तहँ न्हाऊं।
धरती नहीं जहँ पग धरूँ, गगन नहिं तहँ जाऊं।।

मुझ आत्मा के लिए अग्नि नहीं है जहां तप करूं, पानी नहीं है जहां नहाऊं, धरती नहीं है जहां पैर रखूं, आकाश नहीं जहां जाऊं। पंचतत्त्व शरीर के लिए है। आत्मा इन सबसे परे है।

सद्गुरु मां की पुस्तक 'कबीर साखी दर्पण' से

हमलोगों का मूल घर, मूल देश, मूल धाम आत्मदेश या परमात्म देश है। सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं, तुम सभी की परम सत्ता में उपस्थिति थी, परमसत्ता में तुम कलोल-क्रीड़ा कर रहे थे। वहां पर तुम्हें अहं जागा, 'मैं हूं'।

परमात्मा के जिस अंश में अहं जागा, वह संसार में धक्का दे दिया गया। शर्त यह रखा गया कि जब अहं से मुक्त हो जाओगे तो पुनः स्वधाम में स्वीकार कर लिए जाओगे। कबीर साहब कहते हैं, तुम अपने 'मैं' को कैसे भूल गए? अपने 'मैं' को याद करो। सद्गुरु कबीर साहब बीजक रमैनी—३७ में कहते हैं—

छठये मां सभ गैल विगोई।।

अर्थात् 'पांच तत्त्व से परे छठे आत्मतत्त्व में स्थित हो जाने पर आवागमन, जन्म-मृत्यु, दुख-दुर्दशा निवृत्त हो जाते हैं।' सद्गुरु कबीर साहब बीजक की ५२ वीं रमैनी में कहते हैं—

छठये माह दरस सो पावै।।

अर्थात् 'जो परमात्मदर्शन का इच्छुक है, वह पंचतत्त्व निर्मित शरीर से परे छठे अपने स्वरूप आत्मतत्त्व में दर्शन पा सकता है।'

पूजा कर लेना, तप कर लेना या यम-नियम-व्रतादि कर लेना सरल है, पर प्रारंभिक अवस्था में अपने 'मैं' यानी अपने आत्मस्वरूप को स्मरण रखना कठिन है, लेकिन असंभव नहीं। यही जीवन का लक्ष्य है, इस हेतु प्रयत्नशील होना ही साधन की सफलता है। ❀

किसी समय एक राजा था। उसके मन में तीन प्रश्न उठे—१.सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य क्या है? २. सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति कौन है? ३. निश्चित कार्य को आरंभ करने का सबसे महत्त्वपूर्ण समय कौन सा है?

इसका उत्तर जानने के लिए राजा ने सभासदों की एक बैठक बुलाई, पर किसी का उत्तर संतोषजनक नहीं रहा। राजमंत्री का परामर्श मानकर वह सुदूर जंगल की कुटिया में रहनेवाले महात्मा से जिज्ञासा समाधान के लिए चल पड़ा। महात्मा की कुटिया के निकट पहुंचने पर उसने साथ में सुरक्षा के लिए आए गुप्तचरों एवं सैनिकों को जंगल में ही छोड़कर महात्मा से अकेले मिलने का निश्चय किया।

महात्मा को खेत में कुदाल चलाते देख वह चुपचाप खड़ा होकर देखने लगा। कुछ देर बाद जब महात्मा ने दृष्टि उठाई तो राजा से आने का कारण पूछा। राजा ने तीनों प्रश्नों को उनके समक्ष रखा तथा उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। महात्मा ने संकेत द्वारा राजा को निकट बुलाया और अपनी कुदाल दे दी।

राजा ने कुदाल लेकर खेत कोड़ना आरंभ किया। संध्या होने को आई। इतने में एक व्यक्ति महात्मा की कुटिया की ओर दौड़ता हुआ आया और भूमि पर गिर पड़ा। उसके कपड़े रक्त से लथपथ थे, पेट से रक्त की धार

निकल रही थी। दोनों ने मिलकर उसकी मलहम-पट्टी की। घायल व्यक्ति सो गया।

प्रातः काल राजा ने घायल व्यक्ति को क्षमायाचना करते पाया। यह देखकर राजा विस्मय में पड़ गया। आगन्तुक ने अपना परिचय देते हुए कहा, 'मैं किसी समय आपका घोर शत्रु था। आपने मेरे भाई को फांसी दे दी थी, क्योंकि वह बहुत ही खूंखार, अपराधी और हत्यारा था। यद्यपि प्रजाजनों के हित को ध्यान में रखकर आपने न्याय ही किया, किंतु भाई के प्रति अंधमोह के कारण मेरे मन में आपके प्रति प्रतिशोध की भावना जाग गई थी और मैं आपसे बदला लेने का अवसर ढूंढ रहा था।

मुझे मालूम था कि सामान्य वेशभूषा में आप महात्मा के पास आए हैं। मार डालने की इच्छा से मैं झाड़ी में छुप गया था, किंतु इसी बीच आपके गुप्तचरों ने मुझे देखकर पहचान लिया तथा घातक हथियार से हमला कर दिया।

शत्रु होते हुए भी आपने मेरे प्राणों की रक्षा की। अब हमारा द्वेषभाव समाप्त हो गया है। मैं आपके चरणों का सेवक हूं। आप मुझे चाहें तो दंड दें अथवा क्षमा करें।'

उसकी बातें सुनकर राजा स्तब्ध रह गया। अप्रत्याशित ईश्वरीय सहयोग मानकर वह मन-ही-मन ईश्वर को धन्यवाद देने लगा।

महात्मा ने मुस्कराते हुए कहा, 'राजन! आपको अपने प्रश्नों के उत्तर मिल गया?' राजा को मौन देखकर उन्होंने पुनः अपनी बात आगे बढ़ाई और कहा, 'व्यावहारिक रूप से आपके प्रश्नों का उत्तर दिया जा चुका है।'

राजा ने कहा, 'मैं कुछ समझा नहीं महात्मन्! कृपया स्पष्ट रूप से बतलाने की कृपा करें।'

महात्मा ने कहा, 'सबसे महत्त्व का कार्य वह है, जो सामने है। सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति वह है, जो हमारे पास है और सबसे महत्त्व का समय अभी यानी वर्तमान है।

यदि आप आकर मुझसे श्रद्धा-सहानुभूति नहीं दिखलाते तथा तुरंत चले जाते तो न आपके प्रश्नों का उत्तर मिल पाता और न आपके जीवन की रक्षा हो पाती। अतः सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति मैं था, जिसे सहायता अपेक्षित थी, महत्त्वपूर्ण कार्य मेरी सहायता करना(खेतों में कुदाल चलाना) था। महत्त्वपूर्ण समय वही समय था।

दूसरा महत्त्वपूर्ण व्यक्ति घायल आगन्तुक था, महत्त्वपूर्ण कार्य उसकी सेवा थी, जिससे उसकी जीवनरक्षा, उसका हृदय-परिवर्तन एवं आपकी जीवनरक्षा संभव हो सकी। महत्त्वपूर्ण समय भी वही था, जिसके सदुपयोग से शत्रु भी मित्र में बदल गया।

राजा को अपने तीनों प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर मिल गया। वह महात्मा के चरणों में श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और अपने महल की ओर प्रस्थान किया।

महत्त्वपूर्ण कार्य, महत्त्वपूर्ण व्यक्ति एवं महत्त्वपूर्ण समय की कल्पना में अधिकांश व्यक्ति भविष्य का इंतजार करते रहते हैं, जबकि सबसे महत्त्वपूर्ण वर्तमान है, प्राप्त कर्तव्य कार्य को मनोयोग से करना और संबंधित व्यक्तियों का सदुपयोग व सेवा ही सर्वांगीण प्रगति का मूलमंत्र है। ❀

(सद्गुरु मां कबीरवाणियों की जैसी मर्मज्ञ हैं, वैसी ही गीता के गूढ़ आत्म-परमात्म विज्ञान की भी। श्रीमद्भगवद्गीता पर 'गीता ज्ञान दर्पण' नामक आपका विशद् भाष्य प्रकाशित है। इसके गूढ़ रहस्यों को आपने इस प्रकार खोला है कि इसका तत्त्वार्थ दर्पण में छवि के समान प्रकट हो आया है। इस अंक में गीता द्वितीय अध्याय के संत्तावनवें श्लोक की व्याख्या प्रस्तुत है।)

स्थिर बुद्धि की विशेषता

श्रीभगवानुवाच

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

(गीता २.५७)

'जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ उस-उस शुभ या अशुभ वस्तु को प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है।'

क्षणे रूष्टा क्षणे तुष्टा रूष्टा तुष्टा क्षणे क्षणे

क्षण में ये विचार उत्पन्न हुआ, क्षण में विचार बदल गया। क्षण में लगा कि परमात्मप्राप्ति ही इस जीवन का लक्ष्य है और जब संसारियों की संगति हुई तो लगने लगा, किसने परमात्मा को देखा है? संसार का सुख ही वास्तविक है। क्षण में मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ, क्षण में मन राग के कुएं में छलांग लगा दिया। मन की स्थिति का वर्णन करते हुए सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं–

कबहुँक मन खल खल हँसे, कबहुँक ऊठे रोय।
कबहुँक मनुवाँ पर जरे, कबहुँक चला बिगोय।।

'कभी मन हंसता है और कभी रोने लगता है। कभी मन दूसरे को देखकर ईर्ष्या करने लग जाता है और क्षण में मन सब कुछ का त्याग करके अध्यात्म मार्ग की ओर चल देता है।'

इस तरह जिसकी मति स्थिर नहीं है, जिसका मन चंचल है, जिसकी बुद्धि पल-पल में बदलती रहती है, वह स्थिरबुद्धि-प्रज्ञावान नहीं हो सकता।

विचारक और दार्शनिक

विचारक और दार्शनिक में अंतर होता है। जब तक बोध विचार के द्वारा उत्पन्न है, तब तक कच्चा है। जैसे–मैंने आपको कहा, आप उस विचार को सुने और प्रभावित हो गए। कल किसी अन्य का विचार सुनेंगे तो हो सकता है कि उनके विचारों से प्रभावित हो जाएं। यह परिवर्तन तब तक जारी रहता है, जब तक कि वह विचार दर्शन में न बदल जाए। जब सत्संग में सुने हुए ज्ञान का साक्षात्कार कर लिया जाता है, जब आपके भीतर विवेक के सूर्य का उदय होता है, तब सत्य और असत्य की ठीक-ठीक पहचान हो

जाती है और विचार दर्शन में परिणत हो जाता है, जिसे सद्गुरु कबीर साहब ने अपने भजन में गाया–

मैं कहता हूँ आँखिन देखी, तू कहता है कागज लेखी।
मेरा तेरा मनुवाँ कहो, कैसे एक होय रे।।

अर्थात् 'तुम कागज में लिखे हुए को पढ़कर बोल रहे हो और मैं आंखों से देखी हुई कह रहा हूं। फिर बताओ, तुम्हारा और मेरा मन एक कैसे हो सकता है?'

दो-चार दिन पूर्व मुंबई से एक पत्र आया। उनका कहना था कि परमात्मा नहीं हैं, जो कुछ है, वह जीव है, जीव ही सत्य है। जीव के अतिरिक्त और कोई सृष्टिकर्ता नहीं है। जीव ही अपने कर्मों का कर्ता भी है और उसके फल भोग को देनेवाला भी है।

मैंने उस पत्र के उत्तर में लिख दिया, 'परमात्मा है या नहीं है, इसे समझना हो तो कृपया किसी शास्त्रज्ञ पंडित से विचार या तर्क-वितर्क कीजिए।'

मुझे तर्क-वितर्क के पचड़े में नहीं पड़ना है। मेरे लिए परमात्मा शाश्वत सत्य है। संपूर्ण संसार एक ओर हो जाए और चिल्लाने लग जाए कि परमात्मा नहीं है तो भी 'ज्ञान' (स्वयं के बारे में) यह नहीं मान सकेगा, क्योंकि परमात्मा है, इसका हमने अनुभव किया है।

वह किसी पुस्तक को पढ़कर, किसी के विचारों को सुनकर कह रहा है और मैं आंखों देखी कह रही हूं। मुझे फर्क नहीं पड़ता।

सारा संसार एक तरफ होकर कहे कि संसार के विषय ही सम्पूर्ण सुखदाता हैं, किंतु वे मुझे डिगा नहीं सकते, क्योंकि मेरा अनुभव है कि सांसारिक विषय अपूर्ण, खंडित और दुखों से परिपूर्ण हैं। ये क्षणिक सुख और परिणाम में दुख देनेवाले हैं। सच्चा सुख तो अपनी आत्मा में धंसने पर ही मिलता है।

श्रीकृष्ण यहां स्थिर बुद्धिवाले लोगों के बारे में बतलाते हुए कहते हैं कि जिनकी बुद्धि स्थिर हो गई कि परमात्मा है, जिसने बुद्धि में स्थिरतापूर्वक समझ लिया कि संसार नाशवान है, यहां कोई किसी का नहीं है। जो इस तथ्य के अनुभव से गुजर गया–

साधो यह मुरदे का गांव।
राम लखन जो अमर होके आते।
रहते हाल हजूर।
एक दिन जाना होगा जरूर।।

उसे कोई व्यक्ति डिगा नहीं सकता, विचलित नहीं कर सकता, बरगला नहीं सकता। ज्ञानी अनुकूल परिस्थितियों, अनुकूल भोगों को पाकर प्रसन्न नहीं होते और प्रतिकूल परिस्थितियों, भोगों को पाकर न ही दुखी-खिन्न होते हैं।

हमलोग ऐसे महापुरुषों का केवल गुणगान करते हैं, उनके गुणों को अपने में धारण करना आवश्यक नहीं समझते। सोचते हैं, किसी भी महापुरुष का गुणानुवाद करके हमारा बेड़ा पार हो जाएगा। ऐसे लोगों की आंखों को खोलते हुए सद्गुरु कबीर बीजक ग्यान चौंतीसा के अंतर्गत कहते हैं–

बबा बरबर करे सभ कोई,
बरबर करे काज नहीं होई।

'वह बड़ा है, वह महान है, लोग इस तरह की बातें कहते हैं, परंतु केवल बड़ा है, बड़ा है

कहने से काज सिद्ध नहीं होता है।'

केवल बड़ा कहने से कार्य की सिद्धि हो जाए, अंदर में स्थिरता, शांति, ज्ञान अथवा आत्मसुख का आस्वादन अथवा मोक्ष को प्राप्त किया जा सके अथवा परमात्मा का साक्षात्कार हो, यह नहीं हो सकता है। कार्य सिद्ध होने के लिए बड़ों के पदचिह्नों पर चलकर आपको भी बड़ा बनना होगा।

समत्व के उदाहरण : श्रीराम

श्रीराम को देखा जाए। एक क्षण पूर्व वे युवराज घोषित होनेवाले हैं। अयोध्या नगरी को खुबसूरती से सजाया जा रहा है। चारों ओर राम की जय-जयकार हो रही है। लोग राम को पलकों में बैठाए हुए हैं। एक क्षण के बाद ही पासा पलटता है। कहां राजगद्दी मिलनेवाली थी, कहां मिल गया वनवास। वह भी तपस्वी वेश में। एक पल के पहले वे सूर्यवंश राज्य के युवराज बननेवाले थे। महान सुख, भौतिक सम्पदा को प्राप्त करने वाले थे और एक क्षण में कंगाल का रूप धारण करके भिक्षापात्र हाथ में लिए चौदह साल के लिए वनवास जाना पड़ रहा है।

राम के चेहरे पर सिकन तक नहीं आई। उन्होंने सोचा, 'मां कैकेयी अच्छा ही कर रही हैं। मैं राज-काज में फंस जाता तो आध्यात्मिक उन्नति से वंचित रह जाता। बहुत अच्छा हुआ, वनवास मिल गया। अब जंगल जाऊंगा, कंदमूल खाऊंगा और जंगल में तप, साधन करनेवाले तपस्वियों, साधुओं, साधकों, ज्ञानियों से मिलूंगा। उनका दर्शन करूंगा, उनके श्रीचरणों में बैठूंगा।'

कैसे हैं राम! कितनी समता है उनमें!

समता के आदर्श : संत कबीर

सद्‌गुरु कबीर साहब को ही देख लिया जाए, वे सत्य का बोध करवाना चाहते है। धर्म का लबादा ओढ़े अधर्म को समाज से दूर करना चाहते हैं। इस कारण धर्म के नाम पर अपनी स्वार्थलिप्सा पूरी करनेवाले पुरोहित वर्ग तिलमिला जाते हैं और कबीर के विरूद्ध खड़े हो जाते हैं। हिंदू-मुस्लिम सब-के-सब सिकन्दर के दरबार में पहुंचकर सिकन्दर से कबीर साहब की शिकायत करते हैं।

सद्‌गुरु कबीर को सिकंदर बहुत-सी यातनाएं देना चाहा, पर चाहकर भी नहीं दे सका। मौलवी-पंडित कबीर को अपमानित करने के लिए सारा राऽऽ राऽऽ कबीराऽ करके गाया करते और कबीर! वे अपनी निंदा करनेवाले से न दुश्मनी करते हैं और जो उनकी प्रशंसा कर रहे हैं, न वे उनसे दोस्ती करते हैं। सद्‌गुरु कबीर साहब कहते हैं—

कबीरा खड़ा बाजार में, मांगे सबकी खैर।
ना काहु से दोस्ती, ना काहु से बैर।।

समता! वे सर्वे भवन्तु सुखिनः की दुआ करते हैं। जीवमात्र सुखी हों, जीवमात्र का हित हो, कल्याण हो, इसकी प्रार्थना करते हैं।

घाटा और अंतस की शांति

मैंने पढ़ा है, जयदयाल गोयन्दका जी के एक मित्र थे। वे कलकत्ते में रूई का व्यापार किया करते थे। पानी के जहाज से वे बाहर से रूई मंगवाते और कलकत्ता व आस-पास के इलाके में सप्लाई करते। एक बार की बात है, वे ध्यान में बैठे हुए थे। कोई दौड़ता-

चिल्लाता हुआ आया और कहने लगा, 'सेठजी! सेठजी! रूई से भरा हुआ आपका जहाज समुद्र में डूब गया। बड़ी क्षति हुई।'

सेठ जी ने आंखें खोली, कहनेवाले के प्रति दृष्टि डाली और फिर मस्त हो गए ध्यान में। जब ध्यान से उत्थित हुए तो उस व्यक्ति ने पूछा, 'सेठ जी! इतना बड़ा घाटा सुनकर भी आप चलायमान कैसे नहीं हुए?'

उन्होंने कहा, 'बेटे! रूई तो डूब ही गई। घाटा तो लग ही गया। अब अंदर की शांति को खोकर और अधिक घाटा क्यों लगाऊं?'

अहा! कितनी शांति है।

अहा शांति!

मैंने सुना है, एक गृहस्वामी ने एक दिन बावर्ची को हलवा बनाने का आदेश दिया। बावर्ची ने हलवा तैयार कर परोस दिया। जब सेठ जी ने हलवे को मुंह में डाला तो थू-थू करने लगे। बावर्ची ने हलवे में चीनी के बदले नमक डाल दिया था। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, 'बावर्ची ने बहुत मेहनत से हलवा बनाया। बेचारा गलती से नमक डाल दिया है। यदि उसे पता चल जाएगा तो बहुत दुखी होगा, इसलिए सारा हलवा घर के पीछे के बगीचे में गाड़ दो।

कितनी शांति है। कितनी समता है। हानि भी मन को उद्विग्न किए बिना अंदर समा जाए, इसे कहते हैं—**तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठता।**

श्रीकृष्ण की समता

श्रीकृष्ण को ही देख लो। जब वे युद्ध में विजय प्राप्त करते हैं तो भी प्रसन्न होते हैं और जब जरासंध के द्वारा युद्ध में पराजित किए जाते हैं और उन्हें युद्ध का मैदान छोड़कर भागना पड़ता है, पहाड़ों की कंदराओं में छुप-छुपकर जीवन व्यतीत करना पड़ता है, फिर गुप्त रूप से द्वारिका पुरी नाम्नी एक नई नगरी बसाकर रहना पड़ता है, तब भी वे प्रसन्न रहते हैं। देखने में प्रतीत होता है कि वे जरासंध से काफी भय खाये हुए हैं, लेकिन कृष्ण के चेहरे की ओर देखा जाए तो वही मुस्कान, वही शांति, वही सौम्यता, वही स्थिरता, वही स्निग्धता।

समता से ही मानव महापुरुष बनता है।

धन्य है ऐसी समता

एकबार महावीर स्वामी अपने ध्यान में बैठे हुए थे। एक चरवाहा आया और महावीर स्वामी को देखकर उसने कह दिया, 'देखो, मैं थोड़ी देर काम से जा रहा हूं। मेरी अनुपस्थिति में तुम मेरी गायों और बैलों का ध्यान रखना, वे इधर-उधर न चले जाएं।'

महावीर स्वामी तो ध्यान में तल्लीन थे। उन्होंने उसकी बात सुनी नहीं। जब चरवाहा लौटकर आया तो देखता है कि वहां न एक भी गाय है, न एक भी बैल है। वह क्रोध में पहले महावीर स्वामी को चोट मारा। जब महावीर जी की आंखें न खुलीं तो वह उनके दोनों कान में कील ठोंकने लगा कि तुमको जब इस वृक्ष से ही चिपके रहना है तो इसी वृक्ष से चिपका ही देता हूं।

कहते हैं, इंद्र प्रकट हुए और क्रोधित होकर चरवाहा को मारने के लिए दौड़े। तब तक महावीर जी का ध्यान टूट गया। वे आंखें

खोले और बोले, 'हे इंद्र! वह तो अज्ञान में है ही, तू भी अज्ञानी बन गया?'

धन्य है यह समता!

समता के अनमोल रत्न

महात्मा बुद्ध एक गांव से गुजर रहे थे। वे बलिप्रथा, छुआछूत के विरोधी थे। इसलिए कुछ ब्राह्मणों ने मिलकर उन्हें खूब खरी-खोटी सुनाई। महात्मा बुद्ध शांत रहे।

हृदय में जैसे-जैसे समता उतरती जाती है, वैसे-वैसे ज्ञान परिपक्व होता जाता है। समता से ही ज्ञान की परीक्षा होती है। जब तक व्यक्ति दुख में उद्विग्न और सुख में स्पृहायुक्त होता रहता है, तब तक जानना कि अभी उसमें ज्ञान की कमी है। इस सूत्र के द्वारा अपनी स्थिति की जांच स्वयं करो।

सीता जी को देख लो, वे गर्भवती थीं, राम ने उन्हें जंगल में अकेली छुड़वा दिया। जंगल में उन्हें दो बच्चे हुए—लव और कुश। जब गर्भकाल में उन्हें संरक्षण की आवश्यकता थी, तब जंगल में छुड़वा दिया।

यदि समता नहीं होती तो दुख-नफरत से सीता जी का मन भर जाता, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने लव-कुश को रामायण का गान करना सिखलाया। राम के प्रति भक्ति भरी। कितनी समता है।

यदि इस तरह समता आ जाए तो जीवन कितना शांत और खुशहाल हो जाए। यहां श्रीकृष्ण यही कहते हैं—

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

'जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित है, सब जगह से स्नेह जिसका हट गया। जो शुभ और अशुभ वस्तु को प्राप्त होकर न हर्षित होता है न शोक करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है।'

सब जगह से स्नेह तभी हटेगा, जब वह स्नेह प्रेम बनकर परमात्मा से जुड़ जाए। सभी के हृदय में भगवान ने प्रेम का बीज बोया है, चाहे वह पशु-पक्षी हो, मनुष्य हो या अन्य कोई भी हो। जब तक वह प्रेम संसार में प्रवाहित होता है, तब तक काम, क्रोध, लोभ-मोह बनता रहता है। जब वह प्रेम स्त्री में प्रवाहित होता है तो काम बन जाता है, जब वह प्रेम धन में प्रवाहित होता है तो लोभ बन जाता है। जब बच्चे, परिवार, मित्र-संबंधियों में प्रवाहित होता है तो मोह बन जाता है और जब यही प्रेम परमात्मा की ओर प्रवाहित होता है तो भक्ति-अनुराग बन जाता है।

व्यक्ति बिना प्रेम किए रह ही नहीं सकता है। किसी न किसी से प्रेम तो होगा ही। अब आपकी मर्जी है कि आप कूड़े के ढेर से प्रेम कर लें अथवा अमृत के कलश से। यह आपकी मर्जी है कि आप पतन से प्रेम करें अथवा उत्थान से, शैतान से प्रेम करें अथवा भगवान से।

जब आपका प्रेम परमात्मा की ओर प्रवाहित होगा तो संसार का कर्तव्य, संसार से किया गया प्रेम भी मोह नहीं बनेगा। जब आप परमात्म-प्रसन्नता के निमित्त अपने जीवन का दान देकर धनार्जन के लिए निकलते हैं तो वह लोभ नहीं बनता। परमात्मा में स्थित होकर किया गया प्रेम संसार के समस्त बंधनों को काट देता है।❀

(सद्गुरु कबीर जयंती (१२–१४ जून २०२२, परवलपुर) के दिव्य अवसर पर परम करुणामयी सद्गुरु मां के अनमोल उपदेश)

सद्गुरु कबीर साहब अपने एक पद में कहते हैं–

राम नाम रटते रहो, जब लग घट में प्राण ।
कबहुं तो दीनदयाल के, भनक पड़ेंगे कान।।

इस साखी को सुनकर शिष्य ने जिज्ञासापूर्वक अपने गुरुदेव से पूछा, 'हे गुरुदेव! हे महात्मन्! आप कहते हैं, राम नाम रटो, लेकिन आप तो अनेक राम की बात कहते हैं। आपने स्वयं अपने मुखारविंद से कहा है–

एक राम दशरथ का बेटा,
एक राम घट-घट में लेटा ।
एक राम का सकल पसारा,
एक राम सबन से न्यारा।।

इनमें कौन-सा राम तुम्हारा?

अर्थात् 'हे गुरुदेव! आप तो कहते हैं कि चार प्रकार के राम होते हैं। एक राम दशरथ के पुत्र श्रीराम हैं। एक राम सभी प्राणियों के हृदय में आत्मा के रूप से निवास करनेवाले हैं और एक राम अखिल सृष्टि को रचनेवाले ईश्वर हैं और एक राम इन सबसे न्यारे हैं। हे सद्गुरु! आप मुझे बताइए कि मैं किस राम का नाम जपूं? कौन-सा नाम लूं?'

तो सद्गुरु कबीर साहब बोले, 'तेरे प्रश्नों का उत्तर मैं बाद में दूंगा, पर पहले तू मुझे एक प्रश्न का उत्तर दे दे।'

शिष्य ने कहा, 'आप कौन-सा प्रश्न पूछना चाहते हैं गुरुदेव! पूछिए। मैं जानूंगा तो अवश्य उत्तर दूंगा।'

तब सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं–

एक बाप तेरी दादी का पोता,
एक बाप तेरी बुआ का भाई ।
एक बाप पति तेरी माता,
एक बाप तेरी नानी का जमाई।।

बता इनमें कौन-सा बाप तुम्हारा?

शिष्य बोला, 'इसमें कठिनाई कहां है?

वही बाप मेरी दादी का पोता,
वही बाप मेरी बुआ का भाई ।
वही बाप पति मेरी माता,
वही बाप मेरी नानी का जमाई।।

इनमें एक ही बाप है मेरा ।

तब सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं–तुम भी सुनते जाओ मेरा उत्तर–

वही राम दशरथ का बेटा,
वही राम घट-घट में लेटा ।
उसी राम का सकल पसारा,
वही राम सकल से न्यारा।।

कहां राम अलग है हमारा?
कहां राम अलग है तुम्हारा?
वही राम है हमारा,
वही राम है तुम्हारा।

शिष्य पूछता है, 'गुरुदेव! जब वही राम दशरथ का बेटा है, वही राम घट घट में लेटा है, वही राम सब जगत का सिरजनहारा है

और वही राम सबसे न्यारा है तो चार राम बताने की आवश्यकता ही कहां है?'

फिर क्यों है चार राम तुम्हारा?
सद्गुरु! फिर क्यों है चार राम तुम्हारा?

सद्गुरु कहते हैं, 'भाई, ये तो सीढ़ी है।'

जैसे यदि आपका घर पांच तल्ले का हो और आप नीचे तल्ले में रहते हों तो ऊपर तल्ला में जाने के लिए आपको सबसे नीचे तल्ले से जुड़ी हुई सीढ़ी से होकर ही दूसरे तल्ले में जाना होगा, पुनः वहां से जुड़ी सीढ़ी से होकर आप तीसरे तल्ले में, तीसरे तल्ले में जुड़ी हुई सीढ़ी से होकर चौथे तल्ले में और चौथे तल्ले से जुड़ी हुई सीढ़ी से चलकर पांचवे तल्ले में पहुंचोगे।

वैसे ही आप गृहस्थ आश्रम में हैं। धरती पर जीते हुए, व्यापार करते हुए, अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए, सभी तरह की जिम्मेवारियों का निर्वहन करते हुए आप अपने भीतर बसे हुए आत्मा राम का साक्षात्कार कर सकते हैं। इसके लिए आपको सर्वप्रथम दशरथनंदन श्रीराम के आचरण और उपदेशों को अपने जीवन में उतारना होगा।

वैश्विक आस्था पुरुष : श्रीराम

हिंदू समाज दशरथ पुत्र राम को भगवान विष्णु का अवतार मानता है और उनकी भक्ति में भावविभोर होता है। श्रीराम वैश्विक आस्था पुरुष हैं। विश्व के अनेकानेक देश श्रीराम से अपने आपको जोड़कर गौरवान्वित होते हैं। श्रीलंका, वर्मा, मलेशिया, थाइलैंड, कंबोडिया, जावा, सुमात्रा, बाली द्वीप के साथ-साथ फिलीपाइन्स, चीन, जापान, प्राचीन अमेरिका आदि देशों में श्रीराम कथा का प्रभाव मिलता है।

मैक्सिको और मध्य अमेरिका की 'मय' और 'इंका' सभ्यता पर रामकालीन संस्कारों का प्राचुर्य है। पेरू में राजा स्वयं को सूर्यवंशी के साथ-साथ श्रीराम का वंशज मानते हैं।

संसार के बहुतायत देशों में वहां के नगरों के नाम श्रीराम के नाम से मिलते-जुलते हैं। विश्व में सैकड़ों भाषाओं में भिन्न-भिन्न तरीके से रामायण कथा मिलती है। कहा जाता है, सर्वप्रथम शंकर जी ने माता पार्वती को यह कथा सुनाई थी। उस कथा को एक कौए ने सुन लिया था। उसी कौए का पुनर्जन्म काकभुशुण्डी के रूप में हुआ। उन्हें शंकर जी से सुनी रामकथा याद रही। शंकर जी द्वारा कही गई रामकथा 'अध्यात्म रामायण' के नाम से प्रसिद्ध है।

कहा जाता है, हनुमान जी ने भी रामकथा लिखी थी। तदुपरांत वाल्मीकिजी जो श्रीराम के समकालीन थे, उन्होंने 'रामायण' नाम से रामकथा लिखी। उनके बाद श्रीराम कथा को लिखनेवालों की झड़ी लग गई।

विश्व में रामकथा का प्रचार संभवतः सबसे अधिक हुआ। श्रीराम के दीवानों की गणना नहीं की जा सकती। वे मनुजता के शिखर पुष्प हैं। उनमें मनुजता के ऐसे-ऐसे दिव्य गुण प्रकाशित हुए हैं कि वे नर से नारायण बन गए हैं। इसलिए उन्हें पुरुषोत्तम यानी मनुष्यों में उत्तम कहा जाता है। वे हम सबके आदर्श मार्गदर्शक हैं। जब तक हम सब उनके जीवनादर्शों को अपने जीवन में

उतार न लें, तब तक कबीर के दूसरे राम से परिचित न हो पाएंगे।

वे मानवीय गुणों के समुच्चय हैं। उनके जीवन में मानवीय गुण संजीवनी बूटी की तरह चमचम चमकता है। राम नाम के दो अक्षर ताली की ध्वनि के समान है, जो दुख-संताप, अशांति-अज्ञान के पंक्षियों को हमसे दूर उड़ा देते हैं।

एक घर-गृहस्थी में रहनेवाले मनुष्य में जितने गुण होने चाहिए, वे सब गुण दशरथपुत्र श्रीराम में विराजित हैं, जिसे अपनाकर मानव भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों जीवन को सुखमय बना सकता है।

श्रीराम मातृदेवो भव, पितृदेवो भव के आदर्श उदाहरण हैं। बचपन से ही उनमें अनेक सद्गुण दृष्टिगोचर होने लगे। उनके लिए तुलसीदास जी कहते हैं—

प्रातःकाल उठि के रघुनाथा ।
मात-पिता गुरु नावहिं माथा।।

प्रातःकाल उठकर श्रीराम अपने माता-पिता और गुरुचरणों का स्पर्श कर आशीर्वाद लेते थे।

बड़ों का आशीर्वाद

बड़ों के आशीर्वाद में बहुत शक्ति होती है। कभी-कभी गुरु मां के पास ऐसे भाई-बहन आ जाते हैं, जो कहते हैं, उनकी कुंडली में अभी शनि की ढैया या साढ़ेसाती अथवा राहू की दशा चल रही है। सोना को छूते हैं तो मिट्टी बन जाती है। बहुत आर्थिक अभाव में हैं, कुछ उपाय बता दीजिए।

गुरु मां सबसे पहले पूछते हैं, 'क्या आपके घर में माता-पिता, दादा-दादी या सास-ससुर जीवित हैं? क्या आप सम्मिलित परिवार में हैं?'

यदि लोग कहते हैं, 'हां जीवित हैं।'

तो गुरु मां कहते हैं कि कष्टमुक्त होने का सबसे सरल उपाय है कि माता-पिता एवं वृद्ध जनों की सेवा करो। शरीर की तपस्या पर प्रकाश डालते हुए श्रीकृष्ण ने कहा, 'माता-पिता, द्विज, गुरु इत्यादि की सेवा और पूजन—यह शरीर से होनेवाली तपस्या है।'

आपके घर में जो भी वृद्ध हों, उनकी छोटी-छोटी आवश्यकताओं को पहचानिए और उन आवश्यकताओं को पूरी कीजिए।

अभी लोग माता-पिता का सम्मान तो करते हैं, पर कुढ़ कुढ़ कुढ़ कुढ़ भी करते रहते हैं।

सहनशील बनें

एक बात याद रखना, साठ-पैंसठ-सत्तर साल की उम्र होने पर अधिकांशतः लोगों की बुद्धि थोड़ी उलझ जाती है और वे थोड़ी चित्र-विचित्र हरकत करने लग जाते हैं। जो नित्य सत्संग से जुड़े होते हैं, उनकी बुद्धि वृद्धावस्था में भी प्रायः ठीक और संतुलित देखी जाती है।

माता-पिता उम्र के प्रभाव के कारण मतलब-बेमतलब कुछ-न-कुछ का बहाना लेकर बोलते रह सकते हैं, चीखते-चिल्लाते रह सकते हैं। आप समझो, जब आप बच्चे थे, तब उन्होंने आपकी इसी तरह की उलटी-सीधी अनेक हरकतों को सहा है।

अब आपके बूढ़े माता-पिता बच्चे तुल्य हैं और आप बड़ों की भूमिका निभा रहे हैं। अतः बचपन में जैसे माता-पिता ने आप सभी भाई-बहनों का पालन-पोषण किया, अब बच्चे बने हुए बूढ़े माता-पिता का पालन और सम्मान करना आपका कर्तव्य है।

श्रीराम ने अपने जीवन से पहला उपदेश यही दिया। नित्य प्रतिदिन माता-पिता, बड़े-बुजुर्ग और गुरुजनों के चरणस्पर्श व सेवा-सम्मान के कारण उनकी बुद्धि, विवेक, विद्या, कीर्ति, शांति बढ़ती चली गई। मनुस्मृति (२.१२१) में कहा गया–

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।।

अर्थात् 'जो नित्य बड़े-बुजुर्गों का अभिवादन, उनकी सेवा-शुश्रूषा और आज्ञापालन करते हैं, उनकी आयु, विद्या, यश और बल नित्य बढ़ते जाते हैं।'

जो अभिवादनशील हैं, उन्हें उनका आशीर्वाद, गुण-ज्ञान सहज ही मिल जाता है। अब विज्ञान ने भी इसे स्वीकारा है। कैसे? इसे आप एक उदाहरण से समझो।

आपका बिल्डिंग पांच तल्ले का हो और पांचवें तल्ले की छत पर आपने पानी की टंकी रखी हो तो पानी का फोर्स किस तल्ले में अधिक होगा? चौथे तल्ले में या तीसरे तल्ले में या दूसरे तल्ले में या सबसे नीचे वाले तल्ले में?

सभी जानते हैं कि पानी का फोर्स सबसे अधिक नीचे तल्ले में ही होगा, क्योंकि ऊर्जा या जल का बहाव स्वाभाविक ही नीचे की ओर द्रुत गति से होता है। उसी तरह आप विनम्रतापूर्वक झुकने की कला सीख लेंगे तो 'लघुता ते प्रभुता मिले' के अनुसार आप अधिकतम आशीर्वाद पा सकते हैं।

जो एक्यूप्रेशर का ज्ञान रखते हैं, वे मस्तिष्क को उपचार देने हेतु पैरों और हाथों के अंगूठे पर प्रेशर-दबाव डालते हैं, जिससे रक्त संचालन ठीक होता है और सिर संबंधी बीमारियों का उपचार भी होता है। उसी तरह चरणस्पर्श के द्वारा बड़े-बुजुर्ग, गुरुजनों के मस्तिष्क में जो शांति, त्याग, वैराग्य, समझ-अनुभव, गुण-ज्ञान, विद्या-बुद्धि, आशीर्वाद भाव है, वह चरणस्पर्श करनेवाले में सहज ही प्रवाहित हो जाता है।

विमाता कैकेयी एवं पिता दशरथ के द्वारा चौदह वर्ष वनवास दिए जाने पर श्रीराम ने उनसे एक भी सवाल न करते हुए उनकी आज्ञा का पालन किया। उन्होंने कहा–

मातु पिता गुर प्रभु कै वानी ।
बिनहिं विचार करिअ शुभ जानी।।

अर्थात् 'माता-पिता, गुरु एवं बड़ों की वाणी को शुभ जानकर पालन करें।'

मातृ-पितृ भक्ति ने उन्हें फर्श से अर्श तक पहुंचा दिया। उन्हें मर्यादापुरूषोत्तम राम से भगवान राम बना दिया। जिस मातृ-पितृ भक्ति ने गणपति जी को अग्रपूज्य बनाया, उसी मातृ-पितृ भक्ति से श्रीराम भगवान बन गए। जब आप भी मातृ-पितृ भक्ति को अपना पाएंगे, तब 'एक राम घट-घट में लेटा' को जानने की पात्रता प्राप्त कर सकेंगे। ❀

बीजक अमृत निर्झरिणी

(सद्गुरू कबीर साहिब का सुप्रसिद्ध मूल ग्रंथ **'बीजक'** अत्यंत गूढ़, रहस्यमय और आध्यात्मिक ज्ञान का दिव्य कोष है और इस महाग्रंथ का सबद प्रकरण इसका हृदयतुल्य है । इसे सरलता से हृदयंगम करने हेतु सद्गुरू मां ने **'विवेक प्रकाशिनी बीजक टीका'** के साथ इस पर विस्तृत उपदेश भी किया है। प्रस्तुत अंक में बीजक अमृत निर्झरिणी के अंतर्गत तैत्तीसवें सबद पर किये गए उपदेशों का प्रारंभिक अंश प्रस्तुत है-)

हंसा प्यारे सरवर तेजि कहां....

सबद-३३

बीजक सबद ३३ की प्रारंभिक पंक्तियों में सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं–

❀ **हंसा प्यारे सरवर तेजि कहां जाय।**
जेहि सरवर बिच मोतिया चुगत होते।
बहु विधि केलि कराय।।

'हे हंसा! अपने प्यारे शरीररूपी सरवर को छोड़कर कहां जा रहे हो? जिस शरीररूपी सरोवर में तुम सत्यबोधरूपी मोती चुगे-प्राप्त किए होते, उस शरीर में तूने बहुत तरह की क्रीड़ाएं (उपभोग) की।' सद्गुरु कबीर साहब की एक वाणी है–

अब कहां चलेहु अकेले मीता।
उठहु न करहु घरहुं की चिन्ता।।
खीर खांड घ्रित पिंड संवारा।
सो तन लै बाहिर कै डारा।।

सद्गुरु कबीर मरणोन्मुख जीव को संबोधित कर कह रहे हैं, 'हे जीव! अब घर परिवार को छोड़कर अकेले कहां जा रहे हो? कल तक घर की चिंता में बेहाल रहते थे, अब उठकर घर की चिंता क्यों नहीं करते हो? जिस शरीर को तूने खीर और खांड़ से संवारा, वह शरीर लोग घर से बाहर निकाल कर रख दे रहे हैं। हाड़ लकड़ी की झूरी एवं केश तृण के ढेर के समान जल जाएगा।'

यहां भी सद्गुरु कबीर साहब कह रहे है, हे हंसा! मैंने तुम्हें इतना बोध दिया, इतना झकझोरा, पर मेरी बातों को न सुना। मैंने रोकर कहा, कभी प्यार-दुलार से कहा-**बाबू ऐसो है संसार तिहारो**। कभी कड़ककर कहा, डांटकर कहा–

हो दारी के ले देउँ तोहिं गारी।
तै समुझ सुपन्थ बिचारी।।

कभी तुम्हारे लिए रोया–

जब हम रोया तब तुम न संभारा।
गरभ बास की बात विचारा।।
अब तैं रोया का तैं पाया।
केहि कारण अब मोहि रोवाया।।

'मैं तुम्हें रो-रोकर समझाया कि सत्य-मार्गी बनो, सत्यखोजी बनो, सत्य-विवेकी बनो, पर तुम माने नहीं। अब तुम मृत्यु के गाल में, चौरासी लाख योनियों में गमन करते हुए रोते हो तो क्या पाओगे? करुणा के वशीभूत हुए ज्ञानी संत को तुम क्यों रुलाते

हो? वे तुम्हें रोते, पतन में जाते देखकर करुणार्द्र हो उठते हैं।' यहां भी यही दर्द है–

❀ **हंसा प्यारे सरवर तेहि कहां जाय।**

'हे हंसा! अपने प्यारे सरवर–शरीर को त्यागकर कहां चले जा रहे हो?'

हे मृत्योन्मुख जीव! जिस शरीर से तुम्हें सर्वाधिक प्रेम था, अब उस शरीर को त्यागकर तुम निकल रहे हो। मृत्यु के मुख में प्रवेश करते हुए शरीर की दुर्दशा हो रही है। आंखों से जल गिर रहा है। कान काम नहीं करते हैं। वाणी लड़खड़ा रही है। तुम बेबस–लाचार हो गए हो। अब शरीर को क्यों नहीं बचाते हो?

यह शरीर तुम्हें प्यारा था। इसी शरीर को सुख देने के लिए जन्म से मृत्युपर्यंत लगे रहे। इस शरीर को अच्छा भोजन दो, अच्छा वस्त्र दो, इस शरीर को सुख से रखो, इसे गद्दे पर सुलाओ, इसके रहने के लिए बंगले बनवाओ। इस शरीर के लिए अपनी पूरी जिंदगी को तबाह कर लिया। अब यह शरीर नष्ट होने जा रहा है। क्यों नहीं उसे बचा लेते हो?

❀ **जेहि सरवर बिच मोतिया चुगत होते।**
बहु विधि केलि कराय।।

'जिस शरीररूपी सरोवर में तुम सत्यबोध रूपी मोती प्राप्त कर सकते थे, उस शरीर को तूने बहुत तरह की क्रीड़ाओं–भोगों में नष्ट कर दिया।'

सरोवर में कंकड़ के साथ–साथ मोतियों का भी ढेर होता है। हंस मोती चुन लेता है और कंकड़ को छोड़ देता है। यदि हंस को दूध और पानी मिलाकर दिया जाए तो वह दूध को ग्रहण कर लेता है और पानी का त्याग कर देता है।

यहां पर कबीर साहब कह रहे हैं, 'हे हंसा! हे विवेकी जीव! यह मानव जीवन मोतीतुल्य सत्य–परमात्म बोध प्राप्ति का स्थान था। यहां तुम मोती चुगते। इस शरीर को सद्मार्ग में लगाते। इस शरीर को आत्म–उत्थान में उपयोग किया होता, पर ऐसा कुछ नहीं किया। बहुत तरह की केलि–क्रीड़ा–भोगों में डूबे रहे।' इसी को अन्यत्र सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं–

जनम सब धोखे में खोये दियो ।
द्वादश वर्ष बालापन बीता,
बीस में ज्वान भयो ।
तीस बरस माया के प्रेरे,
देश विदेश गयो।।
चालिस बरस अन्त जब लागे,
बाढ़ो मोह नयो ।
धन अरू धाम पुत्र के कारण,
निशिदिन शोच भयो।।
बरस पचास कमर भई टेढ़ी,
सोचत खाट पड़यो ।
लड़िका बौहर बोली बोले,
बुढ़ऊ मरि न गयो।।
बरस साठ सत्तर के भीतर,
केश सफेद भयो ।
कफ पित्त वात घेर लियो है,
नयनन नीर बह्यो।।
न गुरु भक्ति न साधु की सेवा,
न शुभ कर्म कियो ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो,
चोला छूटि गयो।।

आशा की किरण

ज्ञानसूत्र

जीवन की बाईं ओर भी दुख की ज्वाला धधक रही है और दाहिनी ओर भी। आगे-पीछे भी मात्र दुख-ही-दुख है। व्यक्ति तरह-तरह के सुख-सरंजामों को जुटा-जुटाकर परेशान है, पर सुख की राह अनपाई ही रह जाती है, पर आप घबराएं नहीं, आशा की किरण है। मनुष्य का जन्म केवल दुख झेलने के लिए नहीं, प्रत्युत दुख को भी सुख का साधन बनाकर सुखमहल में पहुंचने के लिए हुआ है।

भोजन से भूख का दुख, पानी से प्यास का दुख और औषधि से रोग का दुख मिटता है, पर सद्विचार से समस्त दुख दूर हो जाते हैं। हर स्थिति-परिस्थिति में विमल-विधेयक (पॉजिटिव) विचार ही सुख-शांति देनेवाला है। अतः विमल-विधेयक विचारों का ही आश्रय लो। ❀

अर्थ स्पष्ट है। ओह! दुख है, तुम शरीर के पीछे पागल रहे। शरीर को रहने के लिए घर-मकान बनाया। शरीर को सुख देने के लिए परिवार बसाया। तुम कभी अपने को नाच-रंग में, कभी गीत-संगीत में, कभी भोग-वासनाओं में, कभी घूमने और पर्यटन में, कभी संसार के सुखों और विभिन्न समृद्धियों में ही अपने-आपको गंवा दिया। न जाने कितने निरर्थक भोगों-खेलों को खेलने- भोगने में तुम लगे रहे।

शरीर को रहने के लिए तो सुख-सुविधाओं से संपन्न, आधुनिक साज-सज्जा से सुसज्जित आलीशान महल बनाए। किंतु कभी तुमने सोचा, तुम जिस शरीर और अंतःकरण के बीच रह रहे हो, वह तुम्हारी गरिमा के अनुरूप है या नहीं? पाशविक भोगों में डूबा शरीर, पाप-पंक से लथपथ मन, पशु-प्रेतवत भ्रांत बुद्धि, दोष-दुर्गुणों की दुर्गंध से भरे परिवेश में तुम कैसे रहते हो?

यही कारण है कि कोई भी सुख-साधन तुम्हें सुखी-संतुष्ट नहीं बना पाता। बाहर की समृद्धि अंतस् की कंगाली को पाट नहीं सकती। बाहर के सौंदर्य और सुगंध, अंदर से उठनेवाले दुर्गुणों-दुर्विचारों की भड़ास से दब जाते हैं। बाहर के नर्तन-उल्लास, तुम्हारी बदहाली से उत्पन्न हाहाकार से अशांति में परिणत हो जाते हैं।

हे मानव! अपने रहने के स्थान-- शरीर को पाशविक भोगों में न डुबाकर ईश्वरीय प्रयोजनों को सिद्ध करने में लगा। पाप-पंक से सने अंतस् को सद्विचार के जल से धो डाल। उसे दिव्य-दैविक गुणों से सुसज्जित कर, बुद्धि को सत्यबोध के प्रकाश से परिपूरित कर भ्रांति दूर भगा।

फिर देख, तुम्हारे जीवन में आनंद महोत्सव की निर्झरणी कैसे फूट पड़ती है। सागर में तैरते बर्फ की तरह तुम शांति-सुख सागर में कैसे डूबने-उतराने लग जाते हो। सत्यं शिवं सुंदरम् का कमल किस तरह तुम्हारे रोम-रोम से प्रस्फुटित होने लगता है। ❀

❋ **जिज्ञासाएं साधकों की :**
समाधान सद्गुरु 'मां ज्ञान' के -

प्रश्न–निर्भयता और अभयता में क्या अंतर हैं?

निर्भयता और अभयता में मूलभूत अंतर है। निर्भय का अर्थ है–अंदर में भय है, पर भय को अस्वीकार कर अगले के सामने सीना तानकर खड़े हो जाया जाता है। इस तरह की निर्भयता सैनिकों, अपराधियों आदि में खूब देखी जा सकती है।

छोटी छोटी बातों में लड़ने-भिड़ने, मारने-पीटने में तत्पर होने वाले क्रोधियों, कानून, ईश्वर, धर्म-कर्म को ताक पर रखकर चलनेवाले को भी निर्भय माना जा सकता है, पर यह निभर्यता आसुरी वृत्ति है। अभय केवल ज्ञान से ही आता है।

प्रश्न–यज्ञ का वास्तविक तात्पर्य क्या हैं?

यज्ञ संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ होता है–आहूति, समर्पण, चढ़ावा, त्याग, बलिदान आदि।

वैसे तो यज्ञ के चार अंग माने जाते हैं–१. स्नान २. दान ३. होम और ४.जप, परंतु श्रीकृष्ण ने यज्ञ की चर्चा बहुत व्यापक अर्थों में की है। उन्होंने गीता के तीसरे अध्याय के १० वें से १६ वें श्लोक तक और चौथे अध्याय के २४ वें से ३३ वें श्लोक तक उसका वर्णन किया है। गीता के दृष्टिकोण से अपने कर्तव्य कर्मों को आसक्ति, राग-द्वेष, कर्तापन के अहंकार से ऊपर उठकर निष्कामतापूर्वक लोकहितार्थ या भगवत्प्रीत्यार्थ करना यज्ञ है। ज्ञान-भक्ति एवं कर्मयोग की अग्नि में अपने अहं को होम करना सबसे बड़ा यज्ञ है।

प्रश्न–धर्म क्या है?

जिस विचार, भाव, कर्म, संस्कार के द्वारा हृदय में शांति, प्रसन्नता और संतोष रहता हो, वह धर्म है और जिन विचारों से मन में अशांति, चिंता, क्षोभ, तनाव, दुख, रूदन पैदा होता हो, वह सभी अधर्म व पाप है।

उदाहरणतः क्रोध करने से अशांति बढ़ती है। इसलिए क्रोध करना अधर्म है। जब आपमें, चिंता, काम, लोभ, मोह, अहंकार, राग, द्वेष, ईर्ष्या, झूठ, फरेब, आदि उत्पन्न होते हैं और वृद्धि को हैं तो आप दुखी, खिन्न, अशांत और उद्विग्न हो जाते हैं, अतः ये अधर्म हैं। लेकिन जब आप क्षमा आदि दैविक गुणों को अपनाते हैं तो आपके अंतस में शांति की तरंग फैल जाती है, इसलिए ये सभी धर्म हैं।

प्रश्न–तप क्या है? इसकी क्या महत्ता है?

धर्म मार्ग में चलने का उद्योग करने में जो कष्ट, विघ्न-बाधा सहन करना पड़ता है, वह तप है।

साधन करते हुए या जीवन निर्वाह करते हुए जो कष्ट या विघ्न आते हैं, उनको प्रसन्नतापूर्वक सहन करना और सभी

इन्द्रियों को संयमित रखना तप है। तप से तमोगुण एवं देहभाव क्षीण होता है। तप का उद्देश्य शरीर को अनुशासित, इन्द्रियों को संयमित एवं अंतस को निर्मल-निर्विकार बनाने की क्षमता विकसित करना है।

साधक को चाहिए कि वह तप से उत्पन्न शक्ति का प्रयोग दूसरों को वरदान या शाप देने या अनिष्ट करने अथवा अपनी इच्छा पूर्ति में न करे। तप की महिमा बतलाते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी रामचरितमानस में कहते हैं–

तप बल रचइ प्रपंच बिधाता ।
तप बल विष्णु सकल जग त्राता।।
तप बल संभु करहिं संघारा ।
तप बल सेषु धरइ महि भारा।।
तप अधार सब सृष्टि भवानी ।
करहिं जाइ तपु अस जियं जानी।।

'तप बल से ही ब्रह्मा सृष्टि की रचना करते हैं। तप बल से ही विष्णु सारे जगत का पालन करते हैं। तप बल से ही शंकर जगत का संहार करते हैं, तप बल से ही शेषजी पृथ्वी का भार धारण करते हैं। सारी सृष्टि तप बल के ही आधार पर स्थित है। अतः हे भवानी! ऐसा जी में जानकर तू जाकर तप कर।' ❀

'जिज्ञासु की जिज्ञासा'

इस कॉलम के अंतर्गत आप आध्यात्मिक, नैतिक, जीवन-उत्थानक, साधनात्मक प्रश्न लिखकर **'श्री कबीर ज्ञान प्रकाशन केंद्र'** के पते पर भेज सकते हैं, जिसका उत्तर (कुछ चुने हुए प्रश्नों का) सद्गुरु मां के द्वारा आपको आगामी अंक में प्राप्त होगा।

जग हुताशन की..

जग हुताशन की लपटों में,
मैं जली तनिक सुख न पाई ।
जग जलन दूरकर तूने,
अनल एक विचित्र लगाई।।
जलूं पर विचित्र सुख पाऊं,
तव प्रदत मीठे दहन में ।
जब धधके पूर्ण वेग से ,
झलक उठे तू मंदिर मन में ।
प्रिय की अग्रदूति सी बनके ,
प्रिय मिलन का संदेश लाई।।
इसके तीक्ष्ण आंच भड़क में ,
जले सकलो हृदय के पाप ।
स्वयं बिराजे रानी बनकर ,
मिटाकर सारे चित्त के ताप ।
मैं बनी तेरी तुम बने मेरे ,
विरह अनल की साक्षी पाई।।
आवरण हटाकर प्रीतम ,
मुझे अपने अंक से लगा ले ।
बुझाकर मध्यस्थ अगन को ,
असीम निज लाली में मिला ले ।
'ज्ञान' वियोग न ज्वलन रहे ,
केवल अव्यक्त तू रह जाई।। ❀

कथा सौरभ

चार मठों की कहानी

आदि शंकराचार्य वेदांत के महान विद्वान स्वामी गोविंद भगवत्पाद से मिलने बद्रीनाथ की ओर रवाना हुए। मार्ग में ये जब थक गए तो एक तालाब के किनारे बैठकर विश्राम करने लगे। अचानक उन्होंने देखा कि पास ही कुछ मेढक आपस में खेल रहे हैं। वे उनका खेल देखते हुए अपनी थकान मिटाने लगे।

ग्रीष्म ऋतु की भरी दोपहरी थी। भीषण गर्मी से जब आदि शंकराचार्य जैसे तपस्वी परेशान हो गए, तब बेचारे मेढकों की क्या बिसात? तालाब का पानी उबल रहा था। मेढकों का तालाब में रहना मुश्किल हो गया।

अचानक एक मेढक की टर्र टर्र की ध्वनि सुनाई दी। मेढक का एक नन्हा बच्चा भीषण गर्मी को सहने में असमर्थ होकर पानी से बाहर निकला। वह नदी की रेत में जा पहुंचा। रेत भी तप रही थी। नन्हें मेढक की टर्र- टर्राहट और तेज हो गई। गर्म रेत पर वह तड़पने लगा।

इतने में वहां एक बड़ा काला नाग आया और मेढक के बच्चे पर अपना फन पसारकर छांव कर दिया। यह नजारा जब शंकराचार्य जी ने देखा तो वे आश्चर्यचकित रह गए। आश्चर्य की बात थी कि मेढक का भक्षक माना जानेवाला सर्प ही रक्षक बन गया।

आदिगुरु वहां से उठे और स्वामी जी से मिलने गए। उन्होंने यह अनोखी घटना उन्हें सुनाई और आश्चर्य भी व्यक्त किया। स्वामी जी ने कहा, 'यह स्थान पहले शृंगी ऋषि का पावन आश्रम था। जहां सभी जीव आपसी शत्रुता भूलकर आपस में भाईचारे का बर्ताव करते थे। यह घटना भी इस बात की पुनरावृत्ति है।'

आचार्य ने ये शब्द सुने और उनके मुख से निकल पड़ा, 'जब शिकार और शिकारी में एकता संभव है, तब आदमी और आदमी के बीच क्यों नहीं?'

उनकी आंखों के सामने हिमालय से कन्याकुमारी तक फैला विशाल भारत दिखाई देने लगा। उन्होंने सोचा, यदि दक्षिण के लोग हिमगिरि का सम्मान उत्तर के लोगों की तरह करें और उत्तर के लोगों में दक्षिण के लोगों के समान रामेश्वरम् के प्रति श्रद्धा भाव जागे, तब देश में मनुष्य-मनुष्य के बीच एकता और भाईचारा संभव है।

आदिगुरु ने दृढ़संकल्पित होकर समूचे भारत का पैदल भ्रमण किया। उत्तर में बद्रीनाथ, दक्षिण में रामेश्वरम्, पूर्व में जगन्नाथपुरी तथा पश्चिम में द्वारिकानगरी के समीप बड़े-बड़े मठों की स्थापना की। इन चारों मठों से जन-जन में एकता और समभाव का वातावरण विकसित हुआ।

आज भी इन चारों मठों के दर्शनार्थ आनेवाले लोग इस बात के लिए उस नागराज को याद करते हैं, जिसने शंकराचार्य जी के मन में चार मठों की स्थापना करने की प्रेरणा दी।

गतांक से आगे (५९)

वर्ष १९७७

सद्गुरु मां की बोर्ड परीक्षा अब समाप्त हो चुकी थी। जिस दिन परीक्षा समाप्त हुई, उसके दूसरे दिन मंजू बहन की मां उन्हें लेने आ पहुंची।

गुरु माताश्री जी ने कहा, 'इतने दिनों तक तो परीक्षा ही चल रही थी। दो-चार दिन और रहने दीजिए। आखिर यह भी तो अपना ही घर है।'

सद्गुरु मां ने कहा, 'हां, ठीक ही तो मां कह रही हैं।'

सद्गुरु मां और गुरुमाताश्री जी की बातें सुन मंजू बहन के अंतस् में आनंद के लड्डू फूट रहे थे। सोची शायद दो-चार दिन और रहने को मिल जाए, लेकिन उनकी मां ने कहा, 'यहीं तो रहेगी। फिर कभी आ जाएगी। बहुत दिन हो गया, अब जाने दीजिए। इसके बाबूजी भी बोलेंगे।'

अंततः मंजू बहन को घर जाने हेतु अपना वस्त्र-कॉपी-पुस्तकादि सारा सामान समेटना पड़ा। एक ओर मंजू बहन अपने सामानों को बैग में भरती जा रही थी तो दूसरी ओर उनके दिल में अजीब टीस उठ रही थी। ऐसा लग रहा था कि यह समय यहीं थम जाए, आगे न बढ़े।

वाह्य व्यवहार में तो उस समय मंजू बहन का सद्गुरु मां से बहन और सखा का रिश्ता था, लेकिन इन दिनों में उन्हें सद्गुरु मां से प्रगाढ़ लगाव हो गया था। हो भी क्यों नहीं, प्रेम के अथाह सागर सद्गुरु मां के पास संसार को देने के लिए केवल प्रेम ही तो है। जैसे बर्फ की चट्टान में बर्फ के सिवा और कुछ नहीं होता, वैसे ही सद्गुरु मां अहैतुकी प्रेम की प्रतिमूर्ति हैं। अहैतुकी प्रेम के सिवा न अभी और कुछ है न उस समय था।

हां, अभी लोग सद्गुरु मां की करुणा-वात्सल्य और मातृत्व को कुछ-कुछ जानने-मानने, समझने और अनुभव करने लगे हैं। उस बचपने में कोई इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था।

जब अपने निंदकों और विरोधियों के प्रति भी सद्गुरु मां के हृदय से केवल प्रेम ही छलकता है, हृदय से आशीर्वाद ही निकलता है तो प्रेमीभक्तों के लिए क्या कहना। उनका तो हृदय से हृदय का जुड़ाव होता है।

सद्गुरु मां जीवन्मुक्त कारक पुरुष हैं। केवल लोककल्याणार्थ ज्ञान व प्रेम बांटने के लिए, लोगों के हृदय में प्रेम-भक्ति का बीजारोपण करने के लिए और प्रेमी-भक्तों को मंजिल तक पहंचाने के लिए आप धरती पर आए हैं।

आप अभी भी आप्तकाम हैं और उस समय भी आप्तकाम थे। तभी तो अभी भी आपके सान्निध्य मात्र से असीम शांति और आनंद की अनुभूति होती है और उस समय भी जो आपके पास आता, उसे लगता कि यह साथ सदा बना रहे। भले ही वे उसका कारण नहीं जानते हों, पर अंतस में अथोर तृप्ति की अनुभूति होती थी।

अंततः वह घड़ी आ गई, जब मंजू बहन को सद्गुरु मां से विदा लेना पड़ा। सजल नेत्रों से मंजू बहन ने सद्गुरु मां को देखा, अभिवादन किया, गुरुमाताश्री जी का चरणस्पर्श किया और अपनी मां के साथ चल पड़ीं अपने निवास स्थान की ओर।

सद्गुरु मां ने अतिरिक्त विषय में डोमेस्टिक साइंस लिया था। अभी सभी विषयों की लिखित परीक्षा तो पूरी हो गई थी, लेकिन डोमेस्टिक साइंस की प्रेक्टिकल परीक्षा लगभग एक माह बाद थी। इस बीच अभी पर्याप्त समय था।

पूज्य सद्गुरु सरकार प्रभु जी भी स्वस्थ होकर अब तिलैया से पुनः बाढ़ वापस जा चुके थे। प्रत्यक्ष रूप में तो सरकार प्रभु ने सद्गुरु मां को संन्यास की अनुमति नहीं दी, लेकिन वे भी पूर्णतः जान चुके थे कि सद्गुरु मां उत्कट प्रेमी भक्त और जन्म-जन्मान्तर के योगी-ज्ञानी, ऋद्धि-सिद्धि के स्वामी हैं। लोककल्याण हेतु ही उनका आना हुआ है। लोक आदर्श के लिए ही उनकी लीलाएं हो रहीं हैं। उन्हें अब घर-गृहस्थी और सांसारिक प्रपंचों में बांध पाना संभव नहीं है।

न चाहते हुए घरवालों को भी अब मनःस्थति बनानी पड़ रही थी कि इन्हें शादी-विवाह के बंधनों में जबरदस्ती जकड़ा नहीं जा सकता। साथ ही विविध अवसरों पर और जब-तब हमेशा ही उन्हें सद्गुरु मां की दिव्य शक्ति, उनके दिव्य व्यक्तित्व, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य की झलक मिलती रहती। सद्गुरु मां के प्रति उनके दिल में आदर-सम्मान और विशेष श्रद्धा का भाव जागने लगा था।

जब गाय के थनों में दूध भर जाता है तो वह रंभाने लगती है, उसके थनों से दूध टपकने लगता है और जब बछड़ा भर पेट दूध पी लेता है तो वह तृप्त हो जाती है। वैसे ही जब सद्गुरु के अंतस में ज्ञान का अमृत लबालब भर जाता है, तो अनायास ही उनके मुखारविंद से उपदेश के रूप में निःसृत होने लगता है, जिससे जिज्ञासु और उनके सान्निध्य में आनेवाले भी उस आनंद का रस चख सकें, जिसमें वे छपाका लगा रहे हैं।

परीक्षा के दो चार दिनों के अंदर ही सद्गुरु मां ने अपने घर पर ही सद्गुरु कबीर साहब कृत बीजक ग्रंथ पर उपदेश करना प्रारंभ कर दिया। सद्गुरु मां के मुखमंडल पर ज्ञान का अद्भुत तेज दपदप करता। धीरे-धीरे यह खबर आस-पास और सभी रिश्ते-नातों तक फैल गई और अनेक लोग सद्गुरु मां के सत्संग में आने लगे।

प्रारंभ में तो उम्र की अल्पता देख पहले लोगों को भ्रम होता, कभी बेटी, पोती, भतीजी, भानजी, कभी बहन तो कभी सखी

आदि रिश्ते का ख्याल आता, लेकिन जब सद्गुरु मां की बातों को सुनने का अवसर मिलता, थोड़ी देर भी उनके सान्निध्य में रहने का अवसर मिलता तो उनकी गलतफहमी जाती रहती और लोग श्रद्धाभाव से अभिभूत हो जाते।

गुरुमाताश्री दमयंती जी ने अभिमन्यु माता सुभद्रा की भांति जन्म के पूर्व गर्भावस्था में ही सद्गुरु सरकार प्रभु जी से उपदेश श्रवण करके बीजक के गूढ़ ज्ञान का संस्कार सद्गुरु मां में डाल दिया था, वह अब मुखर होकर प्रकट हो रहा था।

अब गुरुमाताश्री जी को भी गर्भावस्था से पूर्व संतवेषधारी दिव्य विभूति के प्रकट होकर पूछने का प्रसंग–'आप केवल अपना कल्याण चाहती हैं या सबका?' और माताश्री के द्वारा कहा जाना, 'सबका।' तत्पश्चात् संत के द्वारा 'एवमस्तु' का आशीर्वाद प्राप्त होने की घटना याद आ रही थी तथा सद्गुरु सरकार प्रभु जी की भविष्याणी–'गर्भ में पल रहा शिशु चाहे बच्चा हो या बच्ची, वह उत्कट वैरागी, भक्त और ज्ञानी होगा। उसके आदर्शों पर चलकर लोग अपने को धन्य समझेंगे।'–अब साकार हो रही थी।

घर में कुछेक अपने को बड़ा समझने वाले लोगों को छोड़कर अधिकांशतः सद्गुरु मां की भक्ति के प्रशंसक हो चुके थे, जो उनके दर्शन पाकर, उनसे बातें करके, उनके पास बैठकर अथोर शांति पाते और अपने को धन्य समझते थे। तथापि विरोध करनेवालों की संख्या अभी बहुत कम नहीं थी और जो विरोधी थे, वे कट्टर और दोषदृष्टि वाले भी थे।

इन झंझावातों के बीच सद्गुरु मां की ज्ञानगंगा बह च ली। प्रातःकाल जलपान से पूर्व लगभग एक घंटे का नित्य सत्संग हुआ करता। सर्वप्रथम श्रीमान कुल में जन्म लेनेवाले योगभ्रष्ट साधक तुल्य घर की बहनें, भाई आदि सम्मिलित होने लगे।

गिरिडीह नगर में यह एक चर्चा का विषय बन गया। एकाक सप्ताह के बाद जब मंजू बहन पुनः मिलने के लिए घर आईं तो वे चकित रह गईं। साथ ही उन्हें काफी ग्लानि होने लगी कि मैंने यह क्या किया?

जैसे अर्जुन ने जब श्रीकृष्ण का विराट् रूप देखा तो आश्चर्यचकित होकर अभिभूत हो गया। स्वतः ही उसके हाथ जुड़ गए और उसके अंतस् में भगवान के प्रति विशेष भक्ति उमड़ पड़ी। लेकिन उसे स्मरण हुआ कि भगवान के साथ उसने काफी समय बिताया। हंसी-मजाक, ताने-व्यंग्य, कटुक्तियां, ठेल-ढकेल सब कुछ चलता रहा। ऐसा अनधिकार दुस्साहस वह परमात्मा के साथ करता रहा। ऐसा सोचकर वह पश्चात्ताप व भय से कांपने लगा। फिर नमस्कार करके गद्गद् वाणी से भगवान श्रीकृष्ण से कहा–

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि।।
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्।।

आपके प्रभाव को न जानते हुए, आप मेरे

सखा हैं—ऐसा मानकर प्रेम से अथवा प्रमाद से भी मैंने 'हे कृष्ण!', 'हे यादव!', 'हे सखे! आपके साथ सोने, बैठने, घूमने, बातचीत करने और भोजनादि करने में मेरा आपसे सहज भाव हो गया था कि मैं कभी-कभी आप पर आक्षेप भी कर दिया करता था, परंतु आप अपने बड़प्पन के अनुसार मुझ कुबुद्धि के उन समस्त तिरस्कारों को वैसे ही सहा करते थे, जैसे सखा अपने सखा के या पिता अपने पुत्र के सहा करते हैं।

इस प्रकार जो कुछ बिना सोचे-समझे हठात् कहा है और हे अच्युत! आप जो मेरे द्वारा विनोद के लिये विहार, शय्या, आसन और भोजनादि में अकेले अथवा उन सखाओं के सामने भी अपमानित किये गये हैं—वह सब अपराध अप्रमेयस्वरूप अर्थात् अचिन्त्य प्रभाववाले आपसे मैं क्षमा करवाता हूं।'

अब वह श्रीकृष्ण को मात्र सखा के रूप में नहीं, प्रत्युत ईश्वर के रूप में देख रहा है। फलतः श्रीकृष्ण के प्रति किए गए अपने सखावत् व्यवहारों को याद कर वह पश्चात्ताप से विकल हो रहा है।

कुछ वैसी ही दशा मंजू बहन की हो रही थी। सद्गुरु मां के दिव्य रूप और दिव्य वाणियों को सुनकर जहां वे अपने को गौरवान्वित अनुभव कर रही थीं कि ऐसी दिव्य विभूति सद्गुरु मां के सान्निध्य में उन्हें रहने का सौभाग्य मिला, वहीं उनसे सखावत किए गए व्यवहारों को यादकर ग्लानि और पश्चात्ताप भी हो रहा था।

आगे की चर्चा अगले अंक में। ❀

मानव की पहचान

❊ सद्गुरु मां ज्ञान

हिंदू समाज में अनेक महापुरुष हुए हैं, कोई इस जाति में तो कोई उस जाति में। उनकी जाति को पकड़कर कोई कहता है, मेरे तो कुलदेवता ये हैं। दूसरे लोग कहते हैं, हमारे कुलदेवता ये हैं। तीसरा कहता है, हमारे कुलदेवता ये हैं। चौथा, हमारे कुल देवता ये हैं।

आप कितना भी इस बात को गाओ, लेकिन अंतस में यह बोध रखो कि कुल देवता के अलग अलग होने से आप अलग अलग नहीं हो जाते हैं। जिस कुलदेवता को आप मान रहे हो, वे सभी भारतभूमि के ही हैं।

गोतिया : अपनापन का सूचक

पहले तो भारत में ऐसा नहीं था कि आप अपने चाचा से नफरत करो। सौ-सौ लोग एक साथ रहते थे—चाचा, बाबा, बाबा के भाई लोग एवं अन्य सभी मिल जुलकर प्रेम से रहते थे। यदि किसी कारणवश अलग-अलग भी रहना होता, तब भी सभी में अथोर प्रेम होता, भावना होती कि सभी अपने हैं, हमारे गोत्र के है। इसी में गोतिया की परंपरा चली।

मैं डंके की चोट से कहती हूं, 'यदि आप अपना गोत्र खोजें तो कहेंगे, 'ओह! क्या पागलपन कर रहा था कि हम सोनार हैं तो

हम लोहार हैं, हम यादव हैं तो हम रविदास हैं, हम मारवाड़ी हैं कि हम माहुरी हैं, हम अग्रवाल समाज के हैं कि हम दुसाध हैं कि हम दर्जी हैं कि हम धोबी हैं कि हम नाई हैं कि हम ब्राह्मण हैं या भूमिहार हैं आदि।' मैं कहती हूं, जाति में न उलझकर अपना गोत्र ढूंढो न!

गोत्र क्या है?

भारतीय धर्मशास्त्रों के अनुसार, सृष्टि के आदि में ब्रह्मा जी ने मानस सृष्टि की रचना की। मानस सृष्टि में ब्रह्मा जी के द्वारा जिन भी जीवों को धरती पर भेजा जाता, वही ईश्वर के ध्यान में डूबकर पुनः मोक्ष को उपलब्ध हो जाता। तब ब्रह्मा जी ने मैथुनी सृष्टि की रचना की, जिससे जीव परिवार के प्रेम और मोह में बंधकर रहे।

मैथुनी सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा जी ने सप्त ऋषियों को उनकी पत्नियों के सहित सृजन किया। ब्रह्मा जी से उत्पन्न होने से सभी ब्राह्मण कहलाए। इन्हीं सप्त ऋषियों के नाम पर सात गोत्र बने थे। सप्त ऋषियों के नाम इस प्रकार हैं—कश्यप, अत्रि, भारद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, वशिष्ठ। आगे चलकर इसमें अगस्त्य ऋषि का नाम जुड़ गया। इनके वंशधर इनके नामवाले गोत्र के सदस्य हुए।

तत्पश्चात् उनकी प्रभावशाली संततियों के नाम से भी गोत्र बनते गए। एक गोत्र में विवाह नहीं होता। माना जाता है कि एक गोत्र के लोग एक ही ऋषि के वंशज हैं और उनका खून का रिश्ता है। गोत्र को खंगालने पर चकित हो जाया जाता है। अभी लगभग एक सौ पंद्रह गोत्र हैं, लेकिन उनके मूल में सप्त ऋषि ही हैं।

जाति अनेक गोत्र एक

एक ही गोत्र अलग-अलग जातियों में पाया जाता है। इस तरह जातिवाद का वितंडा जाता रहता है।

उदाहरणतः कश्यप गोत्र ब्राह्मण में भी आता है, राजपूत और पिछड़ी जातियों में भी पाया जाता है। तात्पर्य ये सभी कश्यप ऋषि की संततियां हैं। इसी तरह शाण्डिल्य गोत्र ब्राह्मण में है तो धोबी-नाई में भी मिलते हैं, वैश्य अथवा क्षत्रिय वर्ग वाले लोगों में भी मिलते हैं। इसी प्रकार सभी गोत्र लगभग सभी जातियों में पाए जाते हैं।

हिन्दू धर्म में चार वर्ण माने जाते हैं। इन चारो वर्णों में गोत्र समान रूप से पाए जाते हैं। यह ऐतिहासिक वंश परम्परा का सबसे पुष्ट प्रमाण है, जो बतलाता है कि आज हम भले ही किसी जाति या वर्ण के हों, लेकिन हमारे मूल पिता व वंश एक है। इसलिए हम अलग हैं, तुम अलग हो, ये अलग है, वो अलग हैं—इन पागलपनों से जितनी जल्दी ऊपर उठ सकें, उतना अच्छा है।

वर्णों की उत्पत्ति

जब यह सृष्टि आगे बढ़ी तो संस्कार, गुण और कर्म के अनुसार लोग अपने-अपने वर्ण को चुने—वृणोति इति वर्णः। अर्थात् 'जो चुना गया, वह वर्ण है।'

प्राचीनकाल में विद्यार्थी गुरुकुल में जाकर

ज्ञान प्राप्त करते थे। उस समय क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और लोग जिसे छोटी जाति का कहते हैं, उनलोगों के लिए अलग-अलग गुरुकुल नहीं होता था। श्रीराम जिस गुरुकुल में पढ़ते थे, उसी गुरुकुल में निषाद गुह्य भी पढ़ते थे और गुरुकुल में ही उनकी मित्रता हुई थी। तात्पर्य सबको समान रूप से शिक्षा-दीक्षा दी जाती थी और सभी स्वेच्छा से अपना वर्ण चुनाव करने का अधिकार रखते थे।

जिन्हें पढ़ाना, लिखाना, ध्यान, पूजा-पाठ, यज्ञ-हवन करना-कराना अच्छा लगता था, वे ब्राह्मण कहलाए। लेकिन ब्राह्मण के बेटे जब समझदार हुए और उन्हें लगा कि उनके लिए पूजा-पाठ, यज्ञ-हवन कराना, दान लेना आदि रूचिकर नहीं है। उन्हें गौपालन, खेती अच्छा लगा तो वे वैश्य वर्ण के हो जाते। यदि उनके बच्चे को खेती और पशु पालन में रूचि नहीं रहती तो बच्चे अपनी-अपनी रूचि के अनुसार वर्ण चयन को स्वतंत्र होते। अपनी रूचि, स्वभाव, गुण, योग्यता के अनुसार सभी समाज रूप ईश्वर की सेवा में दत्तचित रहते।

कोई लोहे का कार्य करने में पारंगत हो गया, कोई तेल निकालने के काम में, कोई वस्त्र सिलने, धोने, साफ-सफाई करने में तो कोई उपद्रवी तत्त्वों से समाज की रक्षा करने आदि में। आगे चलकर यदि इन्हीं के बच्चों को ये सब कार्य रूचिकर न हो और उसका मन पूजा-पाठ करना-कराना, पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ-हवन करना-कराना आदि धार्मिक कृत्यों में रमता हो तो वह पुनः अपना वर्ण परिवर्तन कर ब्राह्मण हो जा सकता है। इसी कारण एक ही गोत्र अलग-अलग जातियों व वर्णों में पाए जाते हैं।

वर्ण चयन की स्वतंत्रता

आज के समय में कोई शिक्षक हैं। उनका एक बेटा शिक्षक बनना नापसंद कर बी. टेक कर रहा है, बेटी प्रोफेसर बनने की दिशा में अग्रसर होना पसंद की, छोटा बेटा डॉक्टर बन समाज की सेवा करना पसंद कर उसी ओर अग्रसर हो रहा है। कोई आइ.एस. अथवा नीट निकालना चाहते हैं अथवा प्रशासनिक क्षेत्र में जाना चाहते हैं तो जा सकते हैं। अपनी योग्यता के अनुसार वे अपने इच्छित कार्य कर सकने में स्वतंत्र हैं। जैसे अभी है, वैसे ही प्राचीन काल में भी वर्ण व्यवस्था थी।

सभी के पूर्वज एक

मनुस्मृति के अनुसार, ब्रह्मा ने अपना स्वरूप बदलकर एवं अपने को विभक्त कर विराट् पुरुष की उत्पत्ति की, जिन्होंने मनु को सिरजा और मनु ने महर्षियों को। इन महर्षियों ने एक-एक करके सात मनु उत्पन्न किए, जो सृष्टि उत्पादन कार्य में सक्रिय हुए—मनोः अपत्यम् मानवः। अर्थात् 'मनु की संतान मानव अथवा मनुष्य कहलाई।' सभी मानवों के मूल पुरुष एक ही हैं, चाहे वह किसी भी जाति, धर्म या पंथ को मानने वाला हो।

— सद्गुरु मां की पुस्तक 'उठो शूद्रो! बनो ब्राह्मण' से

वर्ण शब्द स्वयं ही अपनी परिभाषा को स्पष्ट कर देता है। वर्ण को हम तनिक अंतर से वरण भी कह सकते हैं, जिसका तात्पर्य है—स्वीकार करना, चुनना। जैसे वरमाला उसे ही पहनाया जाता है, जिसे अपने जीवनसाथी के रूप में वरण किया गया हो। वरमाला डालने का तात्पर्य उसे वरण किया गया। वरण शब्द से ही स्वयंवर बना है। तात्पर्य जिसमें स्वयं वरण किया जाता है, उसे स्वयंवर कहा जाता है।

इसी प्रकार यह वर्ण भी है। लेकिन समय के साथ ये सब आपस में व्यर्थ ही ज़ाति-वर्ण के नाम पर लड़ाई-झगड़ा करने में रत हो गए—हम इस जाति के, हम उस जाति के, हम ऊंच जाति का, हम निम्न जाति के, हम पिछड़ा, हम दलित, हम फॉरवर्ड, हम बैकवर्ड—में उलझने लगे। नेता लोग इस आग में घृत डालकर अपने स्वार्थ की रोटी सेंकने लगे।

अपने अंतस को बदलें

आप अपने हिंदू धर्म को शक्तिशाली होते देखना चाहते हैं, चाहते हैं कि आप पुनः विश्वगुरु हों, चाहते हैं कि आप पुनः शक्तिशाली हों, कोई आपकी ओर आंख उठाकर भी न देख सके तो सबसे पहले अपने अंतस को बदलिए। समझिए कि वह भी हमारा है। ब्राह्मण भी हमारा है, जिसे शूद्र कहते हो, वह भी हमारा है। जिसे आप वैश्य कहते हैं, वह भी हमारा है, जिसे क्षत्रिय कहते हो, वह भी हमारा है।

जिसे आप नास्तिक कहते हो, वह भी हमारा है, जिसे आप आस्तिक कहते हो, वह भी हमारा है। जो मूर्तिपूजक है, वह भी हमारा है, जो निराकारवादी है, वह भी हमारा है। निर्गुणवादी भी हमारा है, सगुणवादी भी हमारा है। सब अपने हैं। यहां पराया कौन है? आओ, एक-दूसरे का हाथ पकड़ लो।

सार्वभौम सनातन धर्म

सनातन धर्म की ही कुछ अच्छाइयों को मुहम्मद साहब ले पाए। आपके ही धर्म की कुछ अच्छाइयों को मुसा ले पाए। पारसी धर्म के प्रमुख धर्मग्रंथ जिंदावेस्ता में अथर्ववेद के बहुत से मंत्र ज्यों-के-त्यों आते हैं। वे अथर्व ऋषि के वंशज हैं। वे अग्नि की पूजा करते हैं। उस समय अपने देश में यज्ञ-हवन का बहुत प्रचलन था। अथर्वऋषि के अथर्वग्रंथ को लेकर वे वहां बसे, उसी से पारसी मत और फिर यहूदी मत निकला, उसी से ईसा और मुहम्मद साहब हुए।

दुनिया के किसी भी कोने की बहुत गहराई से खुदाई करने से हिंदू देवी-देवताओं के कुछ-कुछ विग्रह अथवा चिह्न मिल ही जाते हैं। तात्पर्य प्रारंभ में हिंदू धर्म सार्वभौम धर्म था। यदि चाहते हो कि हिंदू धर्म पुनः सार्वभौम धर्म बने तो जाति-पाति, रंग-वर्ण, प्रांत-भाषा के भेदभाव से ऊपर उठकर पुनः एकजुट होओ।

अभी भी अमृत उपलब्ध है

दुनिया का सबसे अधिक प्राचीनतम ग्रंथ है ऋग्वेद। ऋग्वेद से ही यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद निकला। इन वेदों में मुगलकाल और अंग्रेजों के काल में क्षेपक नहीं घुस

पाया, यह बहुत बड़ी बात है। अन्यथा वेदों का भी हाल मनुस्मृति जैसा हो गया होता।

अनेक उपनिषदों में ढेर सारे क्षेपक डाले गए, पर गीता में क्षेपक नहीं घुस पाया। अभी भी हमलोगों के पास खालिश अमृत है। श्रीकृष्ण गीता(४.१३) में कहते हैं–

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

अर्थात् 'मेरे द्वारा चार वर्णों की रचना गुण व कर्म के आधार पर की गई है।'

गीता (१८.४१) में भी कहा गया–

कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः।

अर्थात् 'चारों वर्णों के कर्म स्वभाव से उत्पन्न गुणों द्वारा विभक्त किए गए है।'

यही बात वेद और यदि मनुस्मृति से क्षेपक को हटा दिया जाए तो मनुस्मृति में भी है। कबीर, नानक, संतवाणियां उसी विशुद्धतम ज्ञान के अनुपम कोश हैं, जिसका वाहक वेद, गीता और प्राचीनतम ग्रंथ है।

प्राचीनतम अनेकानेक ग्रंथों में वर्ण परिवर्तन का प्रसंग आता है। लोग गुण, कर्म, स्वभाव को परिवर्तित कर इस वर्ण से उस वर्ण में चले गए, उस वर्ण से इस वर्ण में आ गए। पुनः उनकी संतानों को वह वर्ण अच्छा न लगा तो किसी अन्य वर्ण में चले गए। विष्णु पुराण में ऐसे बहुत से श्लोक हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि लोग वर्ण को सरलता से बदल सकते थे।

कुछ लोग कहते हैं, गोरे उच्च वर्ण के और काले निम्न वर्ण के होते हैं। यदि यही वर्ण है तो जो ब्राह्मण या क्षत्रिय काले हैं, वे उच्च वर्ण के क्यों हैं? जो शूद्र गोरे हैं, वे निम्न कैसे कहलाते हैं? वस्तुतः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी में गोरे भी होते हैं और काले भी। गोरे-काले रंग के आधार पर ऊंच-नीच या अलग-अलग वर्णों में विभाजन का कोई औचित्य नहीं है। ये सब बकवासी बातें है।

एक–दूसरे का हाथ थाम लो

गुण और कर्म के आधार पर वर्ण बदलता है और हम सब चाहे किसी भी वर्ण के हों, सप्त ऋषियों की ही संततियां हैं। सभी परस्पर प्रेम और अपनापन के साथ एक-दूसरे का हाथ थाम लो, तब पुनः वेद के पन्ने वायुमंडल में गूंजने लग जाएंगे, फड़कने लग जाएंगे।

सभी अपने हैं। सबको जोड़िये। ऐसा न हो कि शूद्र को जोड़िए तो ब्राह्मण से नफरत करने लगिए अथवा ब्राह्मण को जोड़िये तो शूद्र से नफरत करने लगिए। अथवा सबको जोड़िये और वैश्य से नफरत करने लगिए। अथवा सबको जोड़िए और क्षत्रिय से नफरत करने लगिए। इस तरह की मूर्खता नहीं होनी चाहिए। सब अपने हैं। सभी एक दूसरे की ओर प्रेम से बढ़ें, प्रेम से मिलें।

वेदव्यास जी जब अपने गुरु नारद जी से पूछे कि मैं आपको क्या गुरुदक्षिणा समर्पित करूं तो नारद जी ने कहा, 'तूने मुझसे जो ज्ञान-विज्ञान प्राप्त किया, बोध प्राप्त किया, इसे जन जन तक पहुंचाने की कोशिश कर, यही मेरी गुरुदक्षिणा है।

बहुत पीड़ा होती है यह सोचकर कि अपने लोग दूर-दूर क्यों हैं? गुरु मां की भी यही गुरुदक्षिणा है कि समाज को प्रेम से जोड़ दो।❀

जन्मोत्सव १०. ०९. २०२१ के अवसर पर परम वंदनीया सद्गुरु मां के दिव्य उपदेश

तीन बातें हैं संसार में—प्रतीक्षा, परीक्षा और समीक्षा। इन पर क्रमशः विचार करें।

परीक्षा—स्कूल-कॉलेज की परीक्षाएं होती हैं तो विद्यार्थी परीक्षा देते हैं और शिक्षक-प्रोफेसर उनका वीक्षण करते हैं। शिक्षक-प्रोफेसर प्रश्नपत्र तैयार करते हैं और स्कूल-यूनिवर्सिटी द्वारा परीक्षा की व्यवस्था की जाती है। शिक्षक-प्रोफेसर विद्यार्थी से ज्ञान में बड़े होते हैं। यदि विद्यार्थी शिक्षक- प्रोफेसर की परीक्षा लेना चाहे तो वह परीक्षा नहीं ले सकेगा।

वैसे ही लोग सद्गुरु और ईश्वर की परीक्षा लेना चाहते हैं। वे कहते हैं, 'मैं ईश्वर की इतनी भक्ति कर रहा हूं, यदि वे अमुक दुख दूर कर देंगे, तब मानूंगा कि ईश्वर सच में है।' 'यदि समस्या का समाधान हो गया, तब मानूंगा कि गुरु व गोविंद हैं।'

परीक्षा करो संसार की

लोग परीक्षा लेने चले ईश्वर की और सद्गुरु की, जबकि परीक्षा लेनी चाहिए थी संसार की और अपने मन की। जिस संसार में आप रह रहे हैं, देख रहे हैं, सुन रहे हैं, जान रहे हैं, अनुभव कर रहे हैं, पढ़-लिख रहे हैं, भलीभांति इसे देखो, समझो और परीक्षा लो कि संसार में दुख है या सुख? कौन अपना होता है?

जिन बच्चों को मां-बाप अपनी आत्मा से बढ़कर मानते हैं और अपना सारा सुख, सारा समय, मन, मस्तिष्क, बुद्धि का कतरा-कतरा—सब कुछ अपने बच्चों पर न्यौछावर कर देते हैं, वे बच्चे जब बड़े हो जाते हैं और मां-बाप पर आंखें तरेरते हैं तो मां-बाप को कैसा लगता होगा?

जिन संतानों को अपना माना जाता है, जिस परिवार-घर आदि को अपना माना जाता है, क्या वह घर अपना है? क्या वह परिवार अपना है? क्या वे बच्चे अपने हैं?

यदि बच्चे अपने होते तो माता-पिता बच्चों को छोड़कर कभी नहीं जाते, पर छोड़कर जाना होता है। कभी बच्चे छोड़कर चले जाते हैं, कभी मां-बाप छोड़कर चले जाते हैं। और ये घर-मकान....लोग कहते हैं, 'घर मेरा है', परंतु उस घर में कितने अरब जीव-जंतु छुप कर बैठे हैं और घर को अपना समझ रहे हैं।

जब ग्रेनाइट-मार्बल को फोडकर चींटियों की कतारें निकलते देखती हूं तो मन में वैराग्य हिलारें लेने लगता है कि इन चींटियों को भी लगता है कि यह घर उनका है। एक साथ दोनों का घर हो नहीं सकता है। या तो मेरा घर होगा अथवा चींटियों का घर होगा, लेकिन किसी घर में मनुष्य गिने-चुने दो-चार या आठ-दस होते हैं। यदि अधिक होंगे तो बीस-पचीस होंगे और चींटियां तो लाखों की संख्या में होंगी। स्पष्ट है, उन्हीं चींटियों

का घर होगा।

हमलोग जब इस घर को छोड़कर निकलेंगे तो इस घर को लौटकर देखने तक नहीं आ पाएंगे। तो घर मेरा कैसे? परिवार मेरा कैसे? हमारे मां-बाप हमलोगों को छोड़कर चले गए। हम सब भी अपने बच्चों को छोड़कर चले जाएंगे।

रिश्ते की सच्चाई

जब गुरु मां घर में थे तो एक बार दादाजी गुरु मां से मिलने के लिए आए। वे उस समय तक गुरु मां के प्रति भक्तिभाव रखने लग गए थे। वे समझ चुके थे कि ये (स्वयं के बारे में) कुछ अलग ही मिट्टी के हैं, इसलिए अब विघ्न-बाधा उपस्थित नहीं करते थे और भक्ति रखा करते थे।

उन्हें कहा गया, 'आप बीजक ग्रंथ का पाठ कीजिए।' तो वे पाठ करने लगे।' उन्हें कहा गया, 'सुमिरण में मन लगाइए।' तो वे सुमिरण करने लगे।

एक दिन प्रातःकालीन सत्संग के बाद आए और बोले, 'जो सुख उसके रहते था, वो सुख अब कहां?'

मैंने कहा, 'मैं समझी नहीं कि उसके रहते कौन?'

वे दादी की बात कर रहे थे, जबकि दादी को धरती छोड़े लगभग तेइस-चौबीस साल हो रहे होंगे। दादाजी बोले, 'जब वो थी, तब बात ही कुछ अलग थी।'

गुरु मां (स्वयं) कुछ नहीं बोले, मुस्कराए, मन-ही-मन सोचे, दादी जी तो अभी बाइस तेइस साल की युवती होंगी और विवाह होने का स्वप्न देख रही होंगी और यहां उसके पूर्व पति महोदय उसकी याद में आंसू बहा रहे हैं। बताओ, यह कैसा रिश्ता है?

अतः परीक्षा करो इस संसार की। जब संसार का विश्लेषण नहीं करते हो तो संसार में आसक्त हो जाते हो और छोटी छोटी बातों में ईश्वर-सद्गुरु की भक्ति से दूरी बना लेते हो।

दूसरी बात है—**प्रतीक्षा**। प्रतीक्षा करो ईश्वर की। प्रतीक्षा करो—

वो सुदिन कब आएगा,
जब हम तुम मिल एक होएंगे।

वह सुदिन कब आएगा प्रभु! जब हम तुममें तल्लीन हो जाएंगे— यह प्रतीक्षा होनी चाहिए।

यह कैसी प्रतीक्षा?

प्रायः सभी लोग प्रतीक्षा करते हैं, लेकिन किसकी? जब परीक्षा देते हैं स्कूल वगैरह में तो प्रतीक्षा करते हैं रिजल्ट की। जब शिक्षा पूरी हो जाती है तो प्रतीक्षा करते हैं जॉब की। जब युवावस्था को प्राप्त हुआ जाता है तो प्रतीक्षा करते हैं विवाह की। जब विवाह हो जाता है तो प्रतीक्षा करते हैं संतान की। संतान जब बड़ी हो जाती है तो प्रतीक्षा करते हैं उनके जॉब की। जब जॉब भी लग जाता है तो प्रतीक्षा करते हैं दामाद या बहू आने की। जब दामाद और बहू भी आ गए तो प्रतीक्षा करते हैं नाती-पोतों की। वाह रे हमलोगों की प्रतीक्षा! क्या कमाल की प्रतीक्षा है? प्रतीक्षा भी किए तो किसकी किए?

ओ हो प्रतीक्षा! आत्मप्रक्षालन या आत्मनिर्माण के स्थान पर किसकी प्रतीक्षा? हे भगवान! पोते-पोतियां भी हो गए तो उनके बड़े होने की प्रतीक्षा और यदि जिंदा रह गए तो पोते पोतियों के बच्चों को भी देखने की प्रतीक्षा। अजीब प्रतीक्षा है हमलोगों की।

कब हमलोगों ने प्रतीक्षा की है कि सद्गुरु ने जो ज्ञान दिया, जो उन्होंने उपदेश किया, जो उनकी जीवनशैली है, जो वे बोलते हैं, जैसी उनकी सोच है, वैसा कब बना जाएगा, वैसे कर्म, विचार, बोल, हमारे कब होंगे? क्या आपने कभी प्रतीक्षा की?

यदि प्रतीक्षा की भी तो एक बाल भर प्रतीक्षा की और जब वह प्रतीक्षा जन्म ही ले रही थी, तभी आपने सांसारिक प्रतीक्षा के मोटे-ताजे भैंसों को जन्म दे दिया... बेटा का जॉब लगेगा, बहू आएगी। उसके बच्चों को खेलाएंगे। नाती-पोते आदि की बंधनकारी प्रतीक्षा को जन्म देकर आपने छोटे-से कल्याणकारी प्रतीक्षा शिशु, जो अभी जन्म ले ही रहा था, उसके ऊपर पटक दिया। आपकी बेकार की प्रतीक्षा-भैंसों के कारण आपकी कल्याणकारी प्रतीक्षा का नन्हा शिशु वहीं दम तोड़ दिया।

ऐसा होता है न? प्रतीक्षा करनी चाहिए किसी की, हमलोग प्रतीक्षा करते हैं किसी और की। ऐसा किया जाने पर–

तेरा मेरा मनुवां कैसे एकै होय रे।

तीसरी बात है–**समीक्षा**। समीक्षा का तात्पर्य है–सही-गलत, उचित-अनुचित, अच्छा-बुरा, लाभ-हानि का विश्लेषण करना। समीक्षा एक क्वालिटी है।

समीक्षा किसकी?

समीक्षा अपने आप की करनी चाहिए। अभी तक हम अपने मन को ईश्वरार्पण नहीं कर पाए, इसमें अमुक-अमुक कारण है, जिसे दूर करना अनिवार्य है। उन्हें दूर करना जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य है। मन को समर्पित कर पाने पर सद्गुरु का मन अपना मन हो जाता है, यह कैसे हो, इसकी समीक्षा करनी चाहिए थी। अपनी कमियों को दूर करने हेतु समीक्षा होनी चाहिए थी और हम समीक्षा करते हैं दूसरों की।

लोग समीक्षा करते हैं, वह ऐसा करता है, उसमें ये दोष है, उसके कारण हमें दुख भोगना पड़ा, उसके कारण हम अपने मार्ग से पतित हो गए आदि। अगला दुष्ट है या सज्जन है, इसकी समीक्षा करने से आपका भला होनेवाला नहीं है।

बस अशांति मिलेगी, दुख मिलेगा। आक्रोश के कारण दिमाग फटेगा, तनाव के कारण नींद नहीं आएगी। व्यक्ति आकुल-व्याकुल और विकल रहता है अपनी गलत समीक्षा के कारण।

इन तीनों को सुधारो–परीक्षा, प्रतीक्षा और समीक्षा। फिर देखना **'मन्मना भव'**–मुझमें मन वाला हो' स्वतः हो जाएगा और मन्मना भव हो जाने पर जीवन का सारा भार और दुख की गठरी गिर पड़ेगी।

अब सद्गुरु के चरणों को पकड़कर उड़ चलो मानसरोवर की ओर जहां सद्गुरु का देश है। इस सरल साधन को श्रीकृष्ण ने

गीता में बतलाया है। उसी गीता की वाणी को आपके समझ सकने के योग्य बनाकर प्रस्तुत किया गया।

मन का समर्पण

कहा जाता है–

हे प्रभु! तन तेरा, मन तेरा और धन भी तेरा।

गुरु मां उसमें सुधार करते हैं और कहते हैं–तन भी अपने पास रखो और धन भी अपने पास रखो, केवल अपने मन को ईश्वर के चरणों में समर्पित कर दो। जब मन समर्पित होगा तो शेष सब स्वतः समर्पित स्वयं हो जाएंगे।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।

तू योग, ध्यान, त्रिकुटी, प्राण, भंवरगुफा, आत्मज्ञान और परमात्मा–इन सबके लफड़ों में मत पड़ो। इन सबके द्वारा भी मंजिल पाया जा सकता है, परंतु वैसे ही, जैसे कछुआ स्वयं चलकर पोखरे से मानसरोवर तक जाना चाहे तो जा सकता है, लेकिन एक जन्म में नहीं। अनगिनत जन्मों में। अतः अच्छा है कि श्रीकृष्ण के इस उपदेश को पकड़ लें–

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।

(गीता १८.६६)

अर्थात् 'सभी धर्मों को छोड़कर तू मेरी शरण में आ जा।'

प्रश्न उठता है सब छोड़कर ईश्वर की शरण में आने से क्या होगा? इससे लाभ क्या?

इसका समाधान करते हुए श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं–

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

अर्थात् 'मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त कर दूंगा, तू चिंता मत कर।' अतः–

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरू ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।

(गीता १८.६५)

अर्थात् 'मेरे में मन वाला हो, मेरा भक्त हो जा, मेरी पूजा कर मुझे नमस्कार कर। ऐसा करने पर तू मुझे प्राप्त होगा। ऐसा मैं सत्य-प्रतिज्ञ होकर कहता हूं, क्योकि तू मेरा प्रिय है।' यह ईश्वर का भी संदेश है और सद्गुरु का भी।

सच्ची उपासना

ऐसा नहीं है कि मन का समर्पण कर देने से आपका घर-द्वार, कर्तव्य छूट जाएगा। अब तक आप बच्चों से प्रेम उन्हें अपना मानकर कर रहे थे, अब उन्हें ईश्वर का मानकर प्रेम करो।

अभी आप साफ-सुथरा, फिट-फाट होकर आए हो। आप कहते हो, साफ-सुथरा, फिट रहना हमें अच्छा लगता है। अब सोचो, यह तन, मन आदि सब कुछ ईश्वर का। इसे स्वच्छ रखना इसलिए कि ईश्वर को स्वच्छता पसंद है। ईश्वर की पसंद के अनुसार जीवन जीना ईश्वर की सच्ची उपासना है।

घर बना रहे हो, किसलिए? गुरु-गोविंद के लिए। गुरु-गोविंद यहां विराजित होंगे, इसलिए तो गृहप्रवेश में गुरु मां कहते हैं,

अपने साथ कुछ लाओ या नहीं लाओ, पर अपने साथ गुरु गोविंद की तस्वीर को पकड़े-पकड़े घर में आओ कि हे गुरु गोविंद! तेरा घर, मैं इस घर में आपका सेवक बनकर रहूंगा, आपकी सेवा करने के लिए। अब घर में रहना, भोजन बनाना—सब भजन।

बाल गंदा हो गया है, सिर खुजला रहा है, यह सिर तो गुरु-गोविंद का है। गुरु-गोविंद के सिर में खुजली हो रही है, बुरा लगता होगा उन्हें। चलते हैं, बाल धो देते हैं। बाल धोना भी ईश्वर का काम। इससे सरल साधन क्या होगा?

यही संदेश देने आते हैं सद्गुरु

तू केवल मन को तो सौंप। फिर देख तेरी जिंदगी में कैसा चमत्कार घटित होता है। यही उपदेश करने, यही संदेश देने सद्गुरु बार-बार धरती पर आते हैं, अलग-अलग क्षेत्रों में जन्म लेते हैं, बहुत ही करुणा लेकर धरती पर आते हैं, लेकिन पता नहीं माया ऐसा क्या जादू करती है कि उनके जीवन काल में उन्हें पहचानने वाले बहुत कम मिलते हैं।

अत्यंत निकट रहनेवाले लोग भी उन्हें नहीं पहचान पाते और नहीं पहचान पाते तो मन का समर्पण भी नहीं हो पाता। मन का समर्पण नहीं हो पाता तो सद्गुरु, जो करुणा के कारण धरती पर आए, वे ज्ञान का खजाना लुटाकर पुनः अपने धाम में चले जाते हैं।

सौ-दो सौ साल बाद कभी उनके अंदर पुनः करुणा जोर मारती है और उन्हें लगता है, अब एक बार फिर अपने बच्चों के बीच जाते हैं। शायद कोई उन्हें पहचान ले। शायद कोई अपने मन का समर्पण करने वाला हो, शायद कोई उनके इशारों को समझ सके, उनके दिखाए गए मार्ग का अनुशरण कर सके, उनकी जीवनशैली सीख ले। अपनी करुणा के कारण वे पुनः धरती पर आ जाते हैं। शास्त्र कहता है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुर्साक्षात् पारब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

'गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही शंकर हैं और इन तीनों से बढ़कर गुरु ही साक्षात् पारब्रह्म परमेश्वर हैं। इसलिए श्री गुरुदेव को नमस्कार!'

ये ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं या किसी की कल्पना हैं, उनकी भक्ति से लोगों को लाभ मिलता है या नहीं, पता नहीं। पर सद्गुरु तो कल्पना नहीं हैं। वे तो प्रत्यक्ष हैं, जो ज्ञान देते हैं। इसलिए शास्त्र कहा, 'ब्रह्मा, विष्णु और शिव तथा देवी दुर्गा को कहां ढूंढते फिरोगे, आ जाओ सद्गुरु की शरण में और अपने मन को रख दो उनके चरणों में, फिर देखो कैसा चमत्कार होता है।

सद्गुरु किसी का मन इसलिए नहीं चाहते कि वे शिष्य को गुलाम बनाकर रखें। सद्गुरु शिष्यों का मन इसलिए समर्पित करवाना चाहते हैं, जिससे कि उनमें भी सद्गुरु की क्वालिटी भरी जा सके। इसलिए तो सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं—

कबीर पारस अरु संत में, बड़ो अंतरो जान ।
वह लोहा सोना करे, यह करले आप समान।।

आज का संदेश इतना ही। ❀

कर्म से कर्मयोग

(करने की शक्ति)

❋ सद्गुरु मां ज्ञान

परमात्मा ने मानवमात्र को तीन विशेष शक्तियां दी है—१.करने की शक्ति २.जानने की शक्ति और ३.मानने की शक्ति।

सर्वप्रथम हमलोग करने की शक्ति से परिचित होते हैं।

पशु-पक्षी इत्यादि में कर्म करने की शक्ति सीमित होती है। मानवेतर प्राणी अधिक-से-अधिक वैसा कर्म कर सकते हैं, जिससे उनका पेट भर सके। वे चरते हैं या शिकार करते हैं। इससे उनका पेट भरता है, वे जिंदा रहते हैं। वे प्रजनन करते हैं, जिससे प्रकृति में उनकी उपस्थिति बनी रहती है। वे सोते हैं, जिससे उनका शरीर आराम को प्राप्त करता है। वे अपने से शक्तिशाली से भयभीत होते हैं, जिससे वे अपने जीवन की रक्षा कर पाते हैं।

पशु—पक्षियों को प्राप्त क्षमता

तात्पर्य मानवेतर प्राणियों में चार तरह की क्षमता होती है अथवा वे चार तरह की क्रियाएं करते हैं। पहला—पेट भरने की क्रिया, दूसरा—प्रजनन करने की क्रिया, तीसरा—सोने की क्रिया और चौथा—अपने से शक्तिशाली से भयभीत होने की क्रिया। इतना तक का ही उनमें सामर्थ्य होता है। मनुष्य भी यदि इन्हीं क्रियाओं में आजीवन लगा रहे तो मनुष्य और पशु में अंतर ही न रहेगा।

पशु-पक्षी मोक्ष के अधिकारी नहीं माने जाते है, क्योंकि उनमें कर्म करने की शक्ति अत्यंत सीमित है। जैसे—बाघ एक पशु है। बाघ प्रजाति लुप्त न हो जाए, इसके लिए वे प्रजनन करते हैं। वे मर न जाएं, इसलिए जीवननिर्वाह हेतु खाना खाते हैं। उनके पेट और प्रजनन की क्षमता बनी रहे, इसके लिए वे सोते भी हैं और अपने को सुरक्षित रखने के लिए शक्तिशालियों से भयभीत भी होते हैं।

आपको लग रहा होगा कि बाघ तो भयभीत नहीं होते होंगे। सभी पशुओं का अपना एक क्षेत्र होता है। उस क्षेत्र में यदि दूसरा प्रतियोगी पशु आ जाए और वह अधिक शक्तिशाली हो तो भले ही दोनों बाघ ही क्यों न हों, पर वे डरते हैं। किसी बाघ पर यदि कोई हाथी नाराज हो जाए और उसके पीछे पड़ जाए, उसे पैर से धकेलना, उछालना या दबाना चाहे तो वह भागने लगता है। यह भय का ही तो लक्षण है। अतः आहार, निद्रा, भय और प्रजनन की क्रिया सभी पशु-पक्षियों में पाई जाती है।

इसके अतिरिक्त उपकार का कार्य करना, सोच समझकर कार्य करना आदि वे नहीं कर सकते। सत्संग में सम्मिलित होना, स्वाध्याय करना, सुमिरण-ध्यान करना, सद्कर्म करना आदि पशु-पक्षियों में नहीं है।

कोई पक्षी देखने में कितना भी सुंदर क्यों न हो, कोई पशु शारीरिक दृष्टि से कितना भी शक्तिसंपन्न क्यों न हो, वह कितना भी

आराम और सुख से रहता हो, जैसे–बाघ–शेर आदि अपनी मांद में रहते हैं। पेट भर गया, पैर फैलाकर आराम से सो गए। वे मनुष्यों से अधिक शक्तिशाली भी होते हैं, पर वे सत्संग में नहीं आ सकते हैं।

उनमें भी होती है अमीरी–गरीबी

जैसे भारत में रूपया चलता है तो अमेरिका में डॉलर, रूस में रूबल चलता है तो श्रीलंका में टका। इसी प्रकार अलग–अलग देश में अलग अलग मुद्राएं(करेंसी) हैं। वैसे ही चूहा, गीदड़, बाघ, भालू, चिड़िया–कबूतर, मछली, ऊंट आदि अलग–अलग जीव–जंतुओं के लिए अलग–अलग धन, अलग–अलग मुद्रा (करेंसी) है। उनके पास भी संपदा होती है। वहां भी पैसा कमाना होता है। वहां भी अमीरी–गरीबी होती है। वे भी घर–मकान बनाते हैं। वहां भी सुख–दुख होता है। वह कैसे?

चूहा अपने जीवननिर्वाह के लिए आलू, अनाज आदि को अपने बिलों में जमा करता है। अलग–अलग जीव–जन्तु अपने तरीके से जीवन–सामग्री का संग्रह करते हैं।

अनेक पक्षियों के पास अपना घोसला होता है और बहुतों के पास घोसला नहीं होता है। जैसे–कौआ एक पक्षी है। किसी कौए के पास बहुत अच्छा घोसला है, किसी के पास सामान्य। किसी का घोसला बिलकुल सुरक्षित स्थान पर होता है, जहां उसके बच्चों पर किसी तरह का खतरा न हो। किसी का घोसला ऐसी जगह पर होता है, जहां हमेशा खतरा का सामना करना पड़ता है।

किसी का घोसला ऐसी जगह पर है, जहां हवा तनिक तेज से चलती है तो घोसला तितर बितर होकर बिखर जाता है और किसी का घोसला ऐसे स्थान पर है, जहां पर हवा चलती तो है, पर उसका घोसला अप्रभावित रहता है। किसी–किसी के पास तो सामान्य घोसला भी नहीं है।

जिसके पास शानदार, सुरक्षित घोसला होता होगा, वह अपने आपको अमीर समझता होगा और जिनके पास सामान्य घोसला होता होगा, वह मध्यमवर्गीय कहलाता होगा और किसी के पास घोसला हो ही नहीं तो वह गरीब कहलाता होगा।

ऐसे ही अन्य पशु–पक्षियों के संबंध में भी है। अपने–अपने तरीके का सबके पास धन–मकान–साधन आदि होते हैं। तात्पर्य उनमें भी कोई धनी– मालदार है, कोई मध्यम तो कोई गरीब।

बहुत से हिंसक पशु अपनी मांद में अपने शिकार को संग्रहित रखते हैं और बहुत से जानवर कुछ संग्रहित नहीं करते हैं। जितना खाने का है, उतना खा लिया, शेष वहीं छोड़ दिया। जैसे बाघ–शेर आदि। पेट भर खाने के बाद शेष बचे शिकार को वे घसीटकर अपने मांद में नहीं लाते। शिकार को पाकर वे प्रसन्न होते हैं और भूखे रहने पर दुखी।

कहने का तात्पर्य अमीरी–गरीबी सबमें होती है। सुखी–दुखी सभी होते हैं, पर इससे ऊपर उठकर श्रेष्ठ कर्म वे नहीं कर सकते। वे सत्संग में नहीं आ सकते हैं। वे बीजक, गीता, उपनिषद् इत्यादि सत्य ज्ञान देनेवाले

शास्त्रों को पढ़-सुन नहीं सकते हैं।

मनुष्यों की श्रेष्ठता का राज

कर्म करने की शक्ति मनुष्यों में विशेष रूप से है। मनुष्य अपने कर्म को कर्मयोग बना सकता है। पशु-पक्षी अपने कर्म को कर्मयोग नहीं बना सकते हैं। मनुष्य अपने कर्मों को शुभ और शाश्वत, सत्य और सनातन की ओर मोड़ सकता है, पर पशु-पक्षी, कीट-पतंगे आदि मानवेतर प्राणी अपने कर्मों को शुभ-शाश्वत, सत्य-सनातन की ओर नहीं मोड़ सकते। इसलिए मानव तन सर्वाधिक सुंदर, श्रेष्ठ, दुर्लभ, अनमोल और महत्त्वपूर्ण है। कैसा भी जानवर या पक्षी या जीव-जन्तु हो, वह मनुष्य की बराबरी नहीं कर सकता है।

भले ही कोई सर्प मणिविभूषित हो, वह अपने आपको बहुत धनी मानता हो। ठीक है कि मानव के पास मणि नहीं है, फिर भी मानव मणिधर सर्प से बहुत श्रेष्ठ हैं। रामचरित मानस में श्रीराम कहते हैं–

बड़े भाग्य मानुष तन पावा।

'बहुत भाग्य से मनुष्य शरीर मिलता है।' संसार में जितने जीव जन्तु हैं, उन सबसे श्रेष्ठ मानव शरीर को हमलोगों ने प्राप्त कर लिया है। अब हम अपने कर्म को सत्य सनातन की ओर मोड़ सकते हैं, अपने कर्म को कर्मयोग बना सकते हैं और अपने लिए मोक्ष कमा सकते हैं। पशु-पक्षी मोक्ष नहीं अर्जित कर सकते हैं, क्योंकि उनकी कर्म करने की क्षमता बहुत सीमित है। मोक्ष प्राप्ति का अधिकार केवल मनुष्यों को है।

क्या सत्य है डार्विन का सिद्धांत?

डार्विन-जैसे लोग कहते हैं, आदमी का पूर्वज चिम्पाजी अथवा बंदर रहा है, क्योंकि कभी-कभी वह दो पैरों पर चल लेता है, उसके पास हाथ है। वह एक-दूसरे के शरीर से जूं वगैरह भी निकाल लेता है।

भले ही मनुष्य का शरीर बंदर अथवा चिम्पाजी से किंचित् मिलता हो, पर उसकी बुद्धि और मनुष्य की बुद्धि, उसकी कर्म करने की क्षमता और मनुष्य के कर्म करने की क्षमता, उसके जानने और मानने की क्षमता और हमलोगों के जानने-मानने की क्षमता में आसमान जमीन का फर्क है तो वह मानवों का पूर्वज कैसे होगा?

भारतीय हिंदू दर्शन मानता है कि जितने भी जीव-जंतु हैं, सबको ईश्वर भिन्न-भिन्न सृजित करता है। इसलिए चिम्पाजी अपग्रेड होते-होते मनुष्य बन गया, ऐसा सत्य नहीं है। यदि ऐसा होता तो आज भी अपग्रेट होता हुआ दिखना चाहिए। डार्विन ने कह दिया तो सभी लोग उसका अंधानुकरण करने लगे, यह सही नहीं है।

हिंदू दर्शन : सत्य और वैज्ञानिक

यदि हमलोग अपने धर्मग्रंथों को देखें, जानें, पढ़ें तो पाएंगे कि हमारे शास्त्रों में तो यह लिखा ही नहीं है। आज नहीं तो कल, आनेवाले समय में विज्ञान भी उसे मानेगा, क्योंकि हमारे हिंदू शास्त्रों में जो लिखा है, वह पूर्णतः सत्य और वैज्ञानिक है। उसे हमारे ऋषियों ने गहन डुबकी लगाकर अनुभव किया है।

जैसे—विज्ञान की दृष्टि से हमारी पृथ्वी जड़ है। पर हिंदू धर्म में पृथ्वी को भूदेवी, धरती माता कहा गया। प्रातः अपने बिछावन से धरती पर उतरने के पूर्व धरती को छूकर सिर से लगाया जाता है, एक तरह से क्षमा मांगा जाता है कि हम आप पर चलनेवाले हैं, क्षमा करो।

पौराणिक कथाओं में आता है कि पृथ्वी पर पापियों का भार बढ़ जाने पर पृथ्वी देवी भगवान विष्णु के पास पहुंची और बोली, 'प्रभु! इतने पापियों का भार वहन नहीं कर पा रही हूं। कुछ उपाय कीजिए, जिससे पापियों का भार कम हो।'

तात्पर्य हिंदू धर्म पृथ्वी को जीवंत मानता है। आश्चर्य नहीं है कि कल विज्ञान भी स्वीकार कर ले कि जैसे पेड़-पौधों में चेतना है, वैसे ही पृथ्वी में भी चेतना है।

सचमुच हिंदू शास्त्र अद्वितीय है। जब-जब गुरु मां उसमें डुबकी लगाते हैं तो हृदय धन्य धन्य कर उठता है। अंदर ही अंदर कितनी बार धन्य-धन्य धन्य-धन्य कह उठता है। हमारे पूर्वज धन्य हैं।

खैर, यह बात तो प्रकरांतर की हो गई, पुनः मूल विषयवस्तु पर आ जाओ।

मानवमात्र मोक्ष का अधिकारी

मानव मात्र का मोक्ष में अधिकार है, क्योंकि परमात्मा ने समस्त इंसानों को कर्म करने की और कर्म को योग बनाने की एक समान क्षमता दी है। गरीब-से-गरीब मनुष्य और अमीर-से-अमीर मनुष्य सबको यह क्षमता मिली है। परमात्मा ने सुखी मनुष्यों को भी यह क्षमता दी है और दुखी मनुष्यों को भी। स्त्री को भी दिया और पुरुष को भी दिया। आप उस क्षमता का उपयोग करते हो या नहीं करते हो, यह आप पर निर्भर है।

लोग कहते हैं कि स्त्री और पुरुष में समानता होनी चाहिए। गुरु मां वेदों का अध्ययन कर जाने कि नारी के लिए वेदों में अद्भुत विशेषणों और उपमाओं का प्रयोग किया गया है। उसे घर की रानी और साम्राज्ञी कहा गया। बाहर दुनिया का कार्य करनेवाला पुरुष बाहर का सम्राट है, पर घर की साम्राज्ञी तो नारी ही है। दोनों में कार्यभार बराबर-बराबर बांटा गया। पुरुष बाहरी दुनिया देखे तो स्त्रियां घर की व्यवस्था संभाले। पुरुष सुख सामग्रियों का अर्जन करे और उसे संभालना, सुरक्षित करना स्त्रियों का काम है।

आज भी गृह मंत्रालय और वित्त मंत्रालय बहुत हद तक स्त्रियां अपने कंट्रोल में रखती हैं। पुरुष यदि खर्च भी करते हैं, भले ही वे अपनी कमाई से करते हों, लेकिन वह इसका हिसाब अवश्य रखती है। व्यर्थ का पैसा उड़ाने पर आंखें तरेरने का अधिकार गृह मंत्रालय से अधिक किसी और का हो सकता है क्या? गृह मंत्रालय के द्वारा अलग-अलग विभागों को विकास हेतु फंड दिया जाता है। वे उस फंड का उपयोग कर रहे हैं या दुरुपयोग, इस पर भी गृहमंत्रालय दृष्टि रखता है।

वेदों में भी स्त्री और पुरुष में समानता है। स्त्रियों को अधम, नीच और आध्यात्मिकता को प्राप्त करने में असक्षम नहीं कहा गया।

अमूल्य ज्ञान निधि

❁ सद्गुरु मां ज्ञान

❀ धर्म मृत्यु से मुक्त अस्तित्व की खोज है।

❀ अध्यात्म के बिना भौतिक संपदा मात्र विपदा है।

❀ सत्संग और स्वाध्याय मानव तन में ही संभव है।

❀ सद्संस्कारों से ही सत्यज्ञान की प्राप्ति होती है।

❀ ग्रहों की चाल पर नहीं, भगवान की करुणा पर भरोसा रखो।

❀ विचार एक कला है।

❀ दुखद विचार दुख एवं सुखद विचार सुख का जनक है।

❀ जैसा विचार वैसा उच्चार (उच्चारण) और जैसा उच्चार, वैसा ही आचार (आचरण) होता है।

❀ नकारात्मक विचारों का पलड़ा भारी होने पर सकारात्मक विचार अपना प्रभाव नहीं दिखा पाते।

❀ जैसा कहोगे वैसा ही बन जाओगे। इसलिए मनोमुखता-नकारात्मकता से बाहर निकलो।

❀ जीवन में सुख-शांति और हर परिस्थिति में मुस्कराहट के लिए सकारात्मक विचार कीमती जड़ी-बूटी है। ❀

वृहदारण्यक उपनिषद् में गार्गी का याज्ञवल्क्य के साथ संवाद है। गार्गी संन्यासिनी है, ज्ञानी है। वैदिक काल में स्त्री-पुरुष दोनों को सम माना गया, क्योंकि कर्म करने की क्षमता दोनों में बराबर है।

हो सकता है कि बहनें शारीरिक रूप से भारी भरकम कर्म न कर सके जो भाई लोग करते हैं, लेकिन वह भी अपने कार्यों को सत्य सनातन की ओर उसी तरह मोड़ सकती है, जिस तरह भाई लोग अपने कार्यों को मोड़ सकते हैं। इसलिए दोनों बराबर हैं। कर्म करने की क्षमता दोनों में है। सभी मनुष्य समान हैं। इसलिए सभी मानव मोक्ष के अधिकारी हैं। ❀

सद्गुरु मां के संग साथ

'सद्गुरु मां' के साथ बिताए जानेवाले प्रेरक पलों में अनायास झरते उनके उत्कृष्ट चिंतन व उदात्त चरित्र की मणि-मुक्ताएं, जिनसे आप भी 'सद्गुरु मां' के चिंतन व जीवनशैली से अवगत होकर अधिकाधिक लाभान्वित हो सकें। अतः भक्तों के कुछ अनुभव यहां प्रस्तुत हैं।

प्रभु पर भरोसा

प्रसंग है सन् २०२० के मई माह के प्रथम सप्ताह की। एक भाई सद्गुरु मां के पास आए। वे बहुत व्यथित, अशांत और परेशान-से लग रहे थे। सद्गुरु मां ने उन्हें प्रेमपूर्वक बैठाया, परेशानी का कारण पूछा।

उन्होंने कहा, 'ज्योतिषी कहते हैं, मुझ पर ग्रहों की वक्र दशा चल रही है। भावी अनिष्ट की आशंका से मन बहुत व्यथित और अशांत रहता है।'

सद्गुरु मां ने कहा, 'नित्य सत्संग में आया करो। कोशिश करो कि नित्य कुछ सेवा, सद्कर्म और सुमिरण हो। ग्रहों में भी ईश्वर की ही सत्ता है। इसलिए ग्रहों की चाल पर नहीं, प्रभु की करुणा पर भरोसा रखो।'

उन्होंने सद्गुरु मां की वाणी को विश्वास पूर्वक जीवन में धारण किया। आज वे काफी प्रसन्नचित्त हैं।

अखंड साधन

नवरात्रि का समय था। एक मुमुक्षु बहन सद्गुरु मां के पास आई। उसने कहा, 'गुरु मां! नवरात्रि में तो विशेष पाठ, सुमिरण, ध्यान का संकल्प लिया जाता है, वह तो पूर्ण हो जाता है। लेकिन व्यवहार कार्य करते हुए सरल रूप में सालों भर के लिए साधन को अखंड कैसे बनाया जा सकता है? क्योंकि केवल दो नवरात्रि कर लेने से तो मंजिल मिलेगी नहीं।'

उसकी बातों को सुन सद्गुरु मां के मुखमंडल पर प्रसन्नता की आभा फैल गई, क्योंकि आत्मकल्याण की इच्छा करनेवाले दुर्लभ होते हैं। प्रसन्न होते हुए सद्गुरु मां ने कहा, 'प्रकृति निर्मित शरीर प्रकृति निर्मित संसार की यथायोग्य सेवा करता है, मेरा 'मैं' प्राकृतिक शरीर संसार से भिन्न परमात्मा का अभिन्न अंश आत्मा है। स्वरूपतः 'मैं' शरीर-संसार से असंग-निर्लिप्त हूं-इस भावना से आत्मस्थित होकर कार्य करना परमात्म स्मरण ही है।'

सद्गुरु मां की यह आध्यात्मिक दृष्टि सभी कल्याणेच्छुकों के लिए अमृत संजीवनी है।

गीता बहन, आश्रम

वे भी तो अपने ही हैं

प्रसंग है उन दिनों का जब रोड का चौड़ीकरण हो रहा था (सन २०११ ई.)। श्री कबीर ज्ञान दर्शन परिसर के मुख्य गेट का निर्माण कुछ ही दिन पूर्व पूर्ण हुआ था।

आश्रम के अगल-बगल के अनेक मकान रोड पर बने थे और रोड की जमीन की नापी में आ रहे थे। आश्रम का गेट रोड से काफी हटकर था, किंतु जब नापी होने लगी तो वैमनस्य रखनेवाले कुछ लोग अमीन के साथ लग गए और फीता पकड़ने में मदद करने के बहाने ऐसी नापी किए कि आश्रम के गेट का भी कुछ हिस्सा रोड में आ जाए।

गेट के चौथाई भाग पर कर्मचारी निशान लगा कर चले गए। देशहित में सरकार की व्यवस्था और नियमों का सद्गुरु मां सदैव सम्मान किया करतीं है। सद्गुरु मां ने कहा, 'सरकारी व्यवस्था को गेट तोड़ना पड़े, इससे अच्छा है कि हमलोग स्वयं ही वहां से गेट हटाकर और पीछे कर लें।'

नवनिर्मित गेट का अभी सेंट्रिंग भी नहीं खुला था और गेट तोड़ने की बारी आ गई। जैसे सेवाकार्य से गेट बना था, वैसे ही सेवा कार्य से गेट को तोड़ा जाने लगा। उसके टूटन को हथौड़ी से पुनः तोड़-तोड़कर गिट्टी अलग किया जाता। तत्पश्चात् गिट्टी में हथौड़ी चला-चलाकर उससे सीमेंट को छुड़ाया जाता, जिससे कि उसे पुनः निर्माणकार्य में उपयोग किया जा सके। सद्गुरु मां के पास जो भी साधन हो, सब का यथायोग्य पूर्ण सदुपयोग होता है।

एक संध्या सभी सीमेंट से गिट्टी और गिट्टी से सीमेंट छुड़ाने की सेवा में लगे थे। सद्गुरु मां के सान्निध्य में बड़ा-से-बड़ा और कठिन से कठिन कार्य भी सेवा और एक आनंददायी उत्सव-सा बन जाता है। मुझे भी सेवा का सौभाग्य मिला। सेवा करते-करते मैंने सद्गुरु मां से कहा, 'गुरु मां! आपके प्रति ये लोग इतनी दुर्भावना रखते हैं, इतनी दुष्टता करते हैं, आपको गुस्सा नहीं आता है... इन पर?'

सद्गुरु मां ने कहा, 'किस पर गुस्सा किया जाए? सभी तो अपने हैं। यहां कौन पराया है?'

मैं ठक् रह गई। सर्वसमर्थ होते हुए भी अपने विरोधियों को भी क्षमा कर देते हैं। और तो और. कहते हैं वे भी तो अपने ही हैं... सद्गुरु मां के सिवा ऐसा कौन कह सकता है! धन्य आपकी समता! धन्य आपका वात्सल्य!

अनिता बहन, कृष्णानगर, गिरिडीह

निरहंकारिता हो तो ऐसी

प्रसंग है ३१ अगस्त २०२२ का। आज सद्गुरु मां का पावन जन्मोत्सव है। जन्मोत्सव कार्यक्रम संपन्न हुआ। मुझे भी कार्यक्रम में शामिल होने, सद्गुरु मां के दर्शन-पूजन और सेवा का सौभाग्य मिला। मन आह्लाद से भरकर मयूर की तरह नृत्य कर रहा था।

मैं सोच रही थी, अपना दुर्लभ सान्निध्य, सेवा, सत्संग और दर्शन देकर सद्गुरु मां मुझ पर कितनी भारी दया किए हैं। पहले वर्ष में एक बार ज्येष्ठ पूनम में ही आ पाती थी और कुछ समय रहकर तुरंत जाना पड़ता था। यहां से जाने पर जरा भी मन नहीं लगता, गुरु मां की खूब याद आती और उनका सानिन्ध्य, सेवा, सत्संग, दर्शन के लिए मन खूब छटपटाता रहता।

लगता कि इस जन्म में मेरे लिए यह सब दुर्लभ है। काश! अगले जन्म में बचपन से ही सद्गुरु मां मुझे अपने पास रख लेतीं, जिससे नित्य उनका दर्शन, सत्संग और सेवा-सान्निध्य मिल पाता।

परम दयालु अंतर्यामी प्रभु अंतर की पुकार सुनकर इसी जन्म में दयाकर वह अवसर दे दिए जो मैं चाहती थी। जन्मोत्सव देखने के बाद मन-ही-मन गुरु मां को बारंबार धन्यवाद दे रही थी कि गुरु मां! आपकी अहैतुकी करुणा के कारण ही आज जीवन में शान्ति और आनंद है। ऐसा सोच ही रही थी कि उधर से गुजरते हुए गुरु मां एकाएक मेरे समक्ष खड़े हो गए। उन्हें बंदगी करके मैं बोली, 'गुरुमां! आप मुझ पर भारी दया किए हैं।'

इस पर गुरु मां बोले, 'दया? वह तो आपके भाग्य में था।'

मैं बोली, 'गुरु मां! आप मुझे अपनी शरण में नहीं लेते, अपने चरणकमलों में जगह नहीं देते तो यह कैसे संभव होता?'

गुरु मां ने मुस्कराते हुए कहा, 'यदि आप दूसरा गुरु कर लिए होते तो मैं कैसे दया करती?'

धन्य है गुरु मां की निरहंकारिता!

हे सद्गुरु मां! आपका प्यारा साथ कभी न छूटे। जन्म-जन्मान्तर तक आपके श्रीचरणों में प्रीति बनी रहे, आपका प्रेमिल सान्निध्य मिलता रहे। आपके चरणकमलों में कोटि-कोटि प्रणाम!

दमयंती बहन, मखदुमपुर

अलसी के लाभ व सावधानियां

अलसी (Flaxseed) को तीसी के नाम से जाना जाता है। इसे गरीबों का अखरोट भी कहा जाता है। इसके छोटे-छोटे बीज औषधीय गुणों से भरपूर होते हैं। इसमें लिग्निन, ओमेगा-3, फाइबर, प्रोटीन, बिटामिन B_1, B_6, C, E और कैल्शियम आदि भरपूर मात्रा में होता है।

अलसी को लंबे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इसे हलका भूनकर चूर्ण बनाकर अथवा पानी में भिंगाकर सुबह उसे हलका गुनगुना करके पानी पीकर और अलसी के बीजों को चबा-चबाकर खाया जा सकता है अथवा दही, छाछ, दाल, सब्जी आदि भोज्य पदार्थों में मिलाकर भी उपयोग किया जा सकता है।

इसमें लिग्निन नामक पोषक तत्त्व उच्च मात्रा में होता है, जो रक्त को पतला करता है और कॉलेस्ट्रोल, ब्लडप्रेशर, डायबिटीज, हार्ट-अटैक और कैंसर जैसी बड़ी बीमारियों से बचाता है।

लिग्नन ट्यूमर सेल्स की वृद्धि को रोकता है। इससे कैंसर होने का खतरा कम हो जाता है। इसमें उपस्थित ओमेगा-3 भी कोलोन कैंसर, प्रोस्टेट कैंसर और ब्रेस्ट कैंसर होने से बचाता है। यह टॉक्सिन हटाने

में मदद करता है। मस्तिष्क को स्वस्थ रखता है। कीडनी की मरम्मत और इम्यून सिस्टम को मजबूत करता है।

जो अपने वजन की वजह से परेशान रहते हैं, उन्हें अलसी का सेवन अवश्य करना चाहिए, क्योंकि अलसी में फाइबर की मात्रा बहुत होती है, जिससे लंबे समय तक भूख का अहसास नहीं होता है।

यदि नींद की समस्या हो तो रात में सोने से पहले अलसी खाने से अच्छी नींद आती है।

यदि हाथ, पैर, कमर, जोड़ आदि में दर्द, शारीरिक कमजोरी व थकान रहती हो, आप अपनी स्फूर्ति बढ़ाना चाहते हों तो भोजन के समय छाछ के साथ अलसी के पाउडर का उपयोग लाभदायी होता है।

जिनकी हड्डियां बहुत कमजोर रहती हैं, उन्हें जलपान के समय दही के साथ गुड़ मिलाकर अलसी का सेवन करना चाहिए।

यदि आंखों की रोशनी कमजोर हो तो अलसी, सौंफ और मिसरी तीनों को बराबर मात्रा में मिलाकर इस मिश्रण का एक चम्मच गौ घृत अथवा शहद के साथ रात में सोते समय सेवन करने से लाभ होता है।

अलसी त्वचा को सुंदर बनाने, बाल को रूसीमुक्त करने और बालों का झड़ना कम करने में सहायक होता है। यदि बालों से संबंधित समस्या हो तो सुबह खाली पेट हलके गुनगुने पानी के साथ अलसी पाउडर का सेवन करना चाहिए।

अलसी सेवन से कब्ज की समस्या दूर होती है, किंतु अलसी सेवन के साथ दिन भर में ७-८ ग्लास पानी अवश्य पीना चाहिए।

यदि हार्मोनल गड़बड़ी अथवा मोटापा हो तो अलसी चूर्ण सुबह खाली पेट गुनगुने पानी के साथ अथवा जलपान के साथ लेना चाहिए।

यदि नसों में ब्लोकेज, हड्डी दर्द, जोड़ों के दर्द, कॉलेस्ट्रोल, ब्लड शूकर, साइटिका की समस्या, एड़ी में दर्द या सीढ़ियां चढ़ने, चलने-फिरने में दिक्कत हो अथवा बैठे-बैठे हाथ-पैर में सूजन आ गया हो तो—तीन चार चम्मच अलसी के पाउडर में एक चम्मच सौंठ पाडर, एक-चौथाई चम्मच दालचीनी पाउडर, आधा चम्मच हल्दी पाउडर को अच्छी तरह मिला लें। रात में सोने से पहले एक ग्लास दूध में इस मिश्रित पाउडर का एक चम्मच डालकर सेवन करने से लाभ होता है।

सावधानियां

अलसी को आधे चम्मच से एक चम्मच तक ही खाना चाहिए, क्योंकि इसकी तासीर गर्म होती है। इसकी अधिक मात्रा में सेवन लाभ के बदले हानि भी पहुंचा सकता है।

डायबिटीज अथवा लो ब्लड प्रेशर वाले को अलसी नहीं खाना चाहिए। गर्भ धारण करने की इच्छुक अथवा गर्भावस्था में, किसी प्रकार की ब्लीडिंग के समय अथवा यदि कोई सर्जरी हुई हो या होनेवाली हो अथवा आप छोटे शिशु को स्तनपान कराते हों, पेट की गड़बड़ी, डायरिया आदि हो तो अलसी का सेवन नहीं करना चाहिए। पित्त प्रकृति वाले को अलसी का सेवन कम करना चाहिए।❀

परम वंदनीया 'सद्गुरु मां ज्ञान' की प्रकाशित पुस्तकें

- विवेक प्रकाशिनी बीजक टीका ३३५.००
- गीता ज्ञान दर्पण (भाग-१) ३००.००
- गीता ज्ञान दर्पण (भाग-२) ३००.००
- गीता ज्ञान दर्पण (भाग-३) ३००.००
- गीता ज्ञान दर्पण (भाग-४) ३००.००
- गीता ज्ञान दर्पण (भाग-५) ३००.००
- कबीर साखी दर्पण (भाग-१) २५०.००
- कबीर साखी दर्पण (भाग-२) ३००.००
- कबीर की अनमोल साखियां १७५.००
- साधकों के लिए : अमृत १७५.००
- सच्चा अध्यात्म १७५.००
- अध्यात्म का आश्चर्य २१०.००
- अध्यात्म का रहस्य १३५.००
- अध्यात्म का मार्ग १२०.००
- अमृत वर्षा (नया सं) १२०.००
- अध्यात्म का शिखर १२०.००
- आनंद सागर (नया सं) १००.००
- कबीर क्रांति १००.००
- मन गोरख मन गोविंदा १००.००
- सद्गुरु कबीर और नारदीय.. १००.००
- संत कबीर ज्ञान भजनावली १००.००
- ज्योति पुरुष कबीर (न.सं) ७५.००
- माया महा ठगिनि हम जानी ७५.००
- अवगुण कहूं शराब का ७५.००
- मन को जीते जीत (न.सं) ७०.००
- बलिहारी गुरु आपने ६०.००
- योग की डगर ६०.००
- गुरु हैं बड़े गोविंद से ६०.००
- तीन चमत्कारी सूत्र ६०.००
- शरणागति का चमत्कार ५५.००
- परिवार में स्वर्ग ५५.००
- एकाग्र मन (नया सं) ५५.००
- माताओं अपनी शक्ति... ५५.००
- अमृत कथाएं ५५००
- विद्यार्थियों के लिए ५५००
- कथा कलश ५५००
- प्रकाश उतरा आंगन में ५५.००
- कबीर की पुकार ५५.००
- सच्चा हिंदू धर्म ५५.००
- मेरे जीवन के चार सूत्र ५५.००
- प्रभु तो भक्ति के वशमाई ५०.००
- नवधा भक्ति (नया सं) ५०.००
- कबीर की विष्णु भक्ति ५०.००
- धर्म : सुख का आधार ५०.००
- घूंघट के पट खोल ५०.००
- धनवंता सोई जानिये ५०.००
- दत्तात्रेय के चौबीस गुरु ५०.००
- चिंता से सुख की ओर ५०.००
- दान का पात्र कौन? ५०.००
- बीजक (संत कबीर कृत) ५०.००
- प्रेम : एक दिव्य अनुभूति ४०.००
- पानी बीच बतासा ४०.००
- गुरु ने पठाया चेला ४०.००
- बरसै कंबल भीजै पानी ४०.००
- एकै मटिया एक कुम्हारा ४०.००
- सनातन धर्म हमारा ४०.००
- उठो शूद्रो! बनो ब्राह्मण ४०.००
- भक्ति किसकी करें ४०.००
- तीसरी आंख (नया सं) २०.००
- जिउ मत मारो बापुरा २०.००
- ढ़ाई आखर प्रेम का २०.००
- चिंता क्यों (नया सं) २०.००
- नारी तू नारायणी १५.००
- परमात्मा हमारे हैं १०.००
- चुभै न एकौ तीर १०.००
- हीरा सोई सराहिये १०.००
- मच्छ बिकाने सब चले १०.००
- गुरु ने पुकारा ९.००

पाठक बंधुओं से...

❀ नित्यप्रति सद्गुरु मां के दिव्य उपदेशों को सुनने के लिए जुड़ें हमारे व्हाट्सअप ग्रुप से। जुड़ने के लिए मोबाइल नं. 9155950505 पर संपर्क करें।

❀ जिन पाठक बंधुओं की सदस्यता इस अंक से समाप्त हो रही है (जिनके पते में तारांकित है), वे 'श्री कबीर ज्ञान प्रकाशन केंद्र' के एकाउंट में सदस्यता शुल्क जमा करके अपनी सदस्यता का नवीकरण करवा लें, जिससे पत्रिका अनवरत मिलती रहे। आवश्यक जानकारी हेतु प्रकाशन केंद्र से संपर्क करें।

❀ सेवाधारी बंधु पत्रिका का सदस्य बनाते समय नये-पुराने सभी सदस्यों का मोबाइल नंबर अवश्य लिखें तथा पत्रिका प्राप्त होने पर सप्ताह भर के अंदर उसे अपने पाठक सदस्यों को अवश्य दे दें।

संपर्क सूत्र- 9431453090, 9155950505, 6200183379

पावन जन्मोत्सव के अवसर पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों की एक झांकी

सद्गुरु मां के जन्मदिवस का, दिव्य महोत्सव आया। बच्चे-बड़े या भाई-बहना, सबका मन हरषाया।।
सब कोई झूमे, नाचे-गावे, ढोल - मृदंग बजावे । ऋषि मुनि दर्शन को आए,देव भी शीष नवावे।।

आजादी के अमृत महोत्सव पर 'मां ज्ञान कौशलम्' में ध्वजारोहण करतीं सद्गुरु मां

उपस्थित 'मां ज्ञान कौशलम्' की प्रशिक्षु बहनें एवं प्रशिक्षिकाएं

'मां ज्ञान कौशलम्' की बेटियों के बीच सपरिवार वस्त्र वितरण करतीं सद्गुरु मां